R. S.

शिव

मासिक

वर्ष १] [तरंग ८

सम्पादक—
नन्दूभाई
(निज़ामाबाद दकन)

| वार्षिक ६) | अक्टूबर सन् १९५५ | एक प्रति ॥=) |

सूची पत्रम्

बाहिरी टाइटिल पेज
सूची पत्रम्
शिव के ग्राहकों से दो-दो बातें
प्रार्थना
सम्पादकीय
१-प्रेम
२-मेरा प्यार
३-ईश्वर व्यापक है
४-तू कहाँ ढूँढ़ता है ?
५-ध्यान कर
६-नाम का सुमिरन
७-सुमिरन की सहज युक्ति
८-सुमिरन का फल
९-सत्संग की महिमा
१०-सत्संग के लाभ
११-सत्संग का महत्व
१२-सत्संग का फल
१३-गुरु महिमा
१४-सच्चा उदाहरण
१५-एक गुरू
१६-गुरू कहते किसको हैं !
१७-गुरु महिमा
१८-विदुर जी की भक्ति
१९-शिवरी की कथा
२०-हनुमान जी की कथा
२१-रैदास की प्रार्थना
२२-तीन प्रकार के बोझ
२३-ईश्वर की उपासना
२४-सोचने समझने की बातें
२५-सुमति की महिमा
२६-चाल चलन
२७-उदाहरण
२८-गुरु के लक्षण
२९-आत्मिक जीवन
३०-अपना अपना पक्ष
३१-दुब्धा का जाल
३२-सच्ची बात
३३-शैतान की सन्तान
३४-पढ़ा जाट ईश्वर बराबर
३५-बैकुण्ठ जाने में रोक टोक
३६-आप भला तो जग भला
बन्दना
मानव कल्याण सार्वभौम कार्यक्रम
व्यवस्थापक की डायरी
शिव के नियम

❀ प्रार्थना ❀

तेरी गति मति कौन लखे !

(१)

वेद न जानें महिमा तेरी, ऋषि मुनी फिरें भर्म की फेरी।
शारद तेरे दर की चेरी, आन ही आन बके॥

(२)

अपरम्पार पार निःपारा, तू है सार असार का सारा।
अजर अमर अविनाशी प्यारा, घट घट व्याप रहे॥

(३)

नहीं एक और नहीं अनेका सब बिधि किया विचार विवेका।
भूले ज्ञानी ध्यानी भेषा, कोई न मर्म लहे॥

(४)

तू प्रकाश है तू परछाईं, तू है परम तत्व तू झाईं।
कैसे अस्तुति करूँ गुसाईं ! सुख बुध भर्म बहे॥

(५)

अनहित सहित सकल हितकारी, निराधार तू जगदाधारी।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सेवक शरन चहे॥

है। स्वाद को क्या जाने! इसी प्रकार पुस्तकों के भार से लदे हुये प्राणियों की दशा है। इस विद्या और बुद्धि की बातों से उन्हें लाभ क्या हुआ? न अवस्था बदली, न विवेक विचार आया!

विद्या शक्ति है। ज्ञान बल है। जो विद्या पाकर शक्तिवान अथवा ज्ञान पाकर बलवान नहीं हुये तो इनका यत्न साधन किस काम का हुआ? इससे तो यही अच्छा था कि उनको इनकी छींट भी न लगती। बल और शक्ति तो क्या मिलती यह उल्टे शक्तिहीन और निबल हो गये! कहिये यह दशा शोचनीय है या नहीं? यही कारण होगा कि संत और महात्मा सैन बैन और सङ्केत में समझाते बुझाते हैं और जिनको उनके सैन बैन समझने की योग्यता नहीं होती उनकी ओर से अपनी दृष्टि फेर रखते हैं।

सैन बैन को जो लखे, तासों कहिये धाय।
सैन बैन समझे नहीं, तासों कहे बलाय॥

हम जो अपने मासिक पत्र शिव में नाना प्रकार के चिताने वाले लेख दिया करते हैं उनका कुछ प्रयोजन होता है। बिना प्रयोजन यह काम नहीं किया जाता। हमारा आशय यह है कि जो लोग इसका अवलोकन करें उनके जीवन में शुभ परिवर्तन आजाये और वह अपनी और दूसरों की भलाई कर सकें।

ईश्वर का धन्यवाद है जो थोड़े लोग इस शिव को पढ़ते हैं उनके आचार विचार में इस प्रकार का आनन्द जनक परिवर्त्तन आ रहा है और वह इसे आदर सत्कार की दृष्टि से देखते हैं।

अभी तक हम भूमिका अवस्था में हैं। धीरे धीरे अपने पढ़ने वालों की रुचि व्यवहार, प्रतिभास और परमार्थ की ओर बढ़ाते चले जा रहे हैं और उनमें जैसी जैसी समझ बूझ आती जायेगी उसी प्रकार हम इसको और मनोरञ्जक और प्रभावशाली बनाते चलेंगे जिससे यह हिन्दी साहित्य का पत्र अपने प्रकार का अद्वितीय सिद्ध हो।

शिव के पढ़ने के अतिरिक्त यदि हमारे पढ़ने वाले हमसे और भी कुछ सोच समझ की सेवा लेने की इच्छा करेंगे तो हम सर्वदा उनकी सेवा के लिये तत्पर रहेंगे। जो बात किसी की समझ में न आये वह हमसे पूछ सकते हैं। उत्तर देने में हमारी ओर से कभी विलम्ब न होगा। शिव को हम किसी अपने निज लाभ के अभिप्राय से नहीं निकालते किन्तु यह मन्तव्य है कि हमारे पढ़ने वाले दिनों दिन उन्नति के शिखर पर चढ़ते चलें और अपने जीवन को सुहावने साँचे में ढालते हुये जगत् के प्राणियों के सेवक बनें। "परोपकाराय परोधर्म्मः" अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न होना किन्तु औरों की उन्नति अपनी उन्नति समझना यह मनुष्य मात्र का धर्म्म होना चाहिये। गुरु सबका कल्याण करें।

नन्दसिंह
एडीटर—'शिव'
(निज़ामाबाद दखन)

२५-६-५५

(१) प्रेम

हम तेरे लिये तरसते हैं। तू प्रकाश है। हमारे हृदय को प्रकाशमय कर दे। तू बल और शक्ति है। हमारी अबलता को दूर कर। तू सुख का भण्डार है। आजा! हमें सुखी कर दे। ऐ प्रेम! तू विलक्षण वस्तु है। जिसने प्रेम के रङ्ग को धारण कर लिया उस पर माया मोह का रङ्ग नहीं चढ़ सकता। प्रेमी को न किसी से द्वेष होता है न ईर्षा। वह सब में पवित्रता और भलाई देखता है। इस प्रेम का केन्द्र या आधार ईश्वर है जिसमें सब हैं, जो सब में है और जिससे सब हैं।

---

(२) मेरा प्यार

सारा जगत मेरा अपना आत्मा है। मैं सारे जगत को प्यार करता हूँ। जो ईश्वर भक्त हैं वह मुझको प्यारे हैं। जो ईश्वर भक्त नही हैं वह भी मुझको प्यारे हैं। मुझको क्या अधिकार है कि किसी से केवल मतभेद के कारण घृणा करूँ? जिन्होंने भक्ति पन्थ में अभी पाँव रक्खा है वह भक्ति की दृष्टि से युवावस्था में हैं। जो भक्ति नहीं करते परन्तु अनजान में भक्ति की ओर खिंचे जा रहे हैं वह किशोर अवस्था में हैं। जो भक्ति भाव से एक दम कोरे हैं वह अभी बाल्यावस्था में हैं। यह सब मुझ को प्यारे हैं क्योंकि यह ईश्वर के अमृत पुत्र हैं। आस्तिक हो या नास्तिक सब मिलकर जगत् को पूर्ण अवस्था में दिखाने का यत्न करते हैं। मतभेद अंशा अंशी भाव में रहता है। शरीर में हाथ पाँव नाक कान सभी होते हैं। सब एक से नहीं होते। हाथों से पाँव के काम की आशा रखना भूल और भ्रम है। हाथ को हाथ की दृष्टि से देखो और पाँव को पाँव की दृष्टि से। आँख

के काम नाक के काम से भिन्न होते हैं परन्तु इस भिन्नता के कारण मनुष्य इनसे घृणा नहीं करता क्यों कि सब मिलकर शरीर का नाम पाते हैं। मनुष्य अपने शरीर को प्यार करता है। इसी प्रकार अनेक मनुष्य, अनेक पशु, अनेक जीव जन्तु, अनेक वनस्पति और अनेक तारा मण्डल, सूर्य और चाँद इत्यादि सब मिलकर एक पूर्ण सृष्टि बनते हैं। यह सृष्टि ईश्वर का शरीर है। जिसकी दृष्टि ईश्वर पर रहती है वह कैसे किसी से घृणा कर सकता है ? इस कारण यह सारा संसार मुझको प्यारा है। मैं किससे घृणा करूँ ! और किसको राग और द्वेष की दृष्टि से देखूँ।

(३) ईश्वर व्यापक है

परम संत कबीर साहिब की वाणी है:—

"ज्यों नयनों में पूतली, त्यों खालिक[1] घट माँह।
मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूँढ़न जाँह॥
पुहुप[2] मध्य ज्यों बास है, व्याप रहा जग माँह।
संतों मांहीं पाइये. और कहूँ कुछ नाँह॥
ज्यों तिल भीतर तेल है, ज्यों चकमक[3] में आग।
तेरा प्रीतम तुझ में, जाग सके तो जाग॥"

रोम रोम में, अणु अणु में, बूँद बूँद में वही चमक रहा है। वही हर जगह दिखलाई दे रहा है। शत्रु मित्र सब में रमता राम रम रहा है। हर जगह वह परिपूर्ण हो रहा है। उसको देखो और सार को समझो। फिर तुम भी मेरे ही समान सब को प्यार करने लगोगे। सब में तेरा ही आत्मा है। अपने रूप को इन में देख ! और तुझ को शान्ति मिलेगी। तू कहाँ मारा मारा फिरता है ? भ्रम के परदे को फाड़ डाल

नोट:—१=मालिक, सृष्टि कर्ता। २=फूल। ३=चक्कमक पत्थर

जिसमें तुझ को हर जगह ईश्वर का दर्शन प्राप्त हो। जो प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला में प्रकाशवान है, जो फूलों और पत्तों में रङ्ग और गन्ध बना हुआ है, जो समुद्र की लहरों में लहरा रहा है, जो पानी के बहाव में बह रहा है वह ईश्वर ही तो है। तू और जगह इसे क्यों ढूँढ रहा है? इसके अतिरिक्त तेरा अपना हृदय आप प्रचण्ड अग्नि कुण्ड है, लहराता हुआ समुद्र है और बहती हुई गंगा है। इसे क्यों नहीं देखता? अभी तत्काल तुझे ईश्वर का दर्शन मिल जायेगा।

दोहा

जा कारण जग ढूँढ़िया, सो तो हिर्दय माँह।
परदा दीया भर्म का, ताते सूझे नाँह॥

(४) तू कहाँ ढूँढ़ता है?

वह सब में है और फिर किसी में नहीं। वह हर जगह विराजमान है परन्तु किसी को शक्ति नहीं कि कह सके, 'यह है या वह है।" इस का ज्ञान न तो तीर्थ में मिलता है न मूर्ति में। यदि कहीं पता मिलता है तो केवल संतों के सत्सङ्ग में मिलता है। सत्सङ्ग से दृष्टि बदल जाती है और जिस की दृष्टि बदल गई उसको प्रीतम का दृश्य हर जगह दिखाई देता है। दूसरे इस दृश्य को कठिनता से देख सकते हैं।

कुण्डलियाँ

बैरागिन भूली आप में जल में खोजे राम
जल में खोजे राम जाय कर तीरथ जाने।
भरमे चारों खूँट नहीं सुध अपनी आने॥
फूल माहिं ज्यों बास काठ में आग छुपानी।
खोदे बिन नहिं मिले हाथ धरती में पानी॥

दूध माहिं घृत रहे, छुपी मिंहदी में लाली।
ऐसे पूरण ब्रह्म कहूँ इक तिल नहिं खाली॥
पलटू सत्सँग बीच में करले अपना काम।
बैरागिन भूली आप में जल में खोजे राम॥

(५) ध्यानकर

ध्यान कर और तुझ को मालिक का दर्शन मिलेगा! ध्यान का पाठ केवल योगी, ध्यानी और भक्त ही नहीं सिखाते किन्तु प्रकृति अर्थात् सृष्टि कर्म्म में पग पग पर आवश्यक पाठ के पढ़ाने का प्रबन्ध है। तूने सुना होगा—घड़ियाल पानी में रहता है, रेत में अण्डे देता है और पानी में रहकर अण्डे सेता है। अण्डे देने के पश्चात् फिर वह बाहिर नहीं आता परन्तु ध्यान की उष्णता (गर्मी) से उसे सेता रहता है। तूने देखा होगा पानी भरने वाली स्त्रियाँ अपने सर पर तीन तीन घड़े रख कर और बग़ल में एक एक घड़ा दबाकर चलती हैं और राह में हिलती डोलती हुई बात चीत हँसी ठठोल भी करती जाती हैं परन्तु इन का ध्यान घड़ों पर रहता है। घड़े नहीं गिरते क्योंकि ध्यान शक्ति सूत की माला के समान उन में पुरोई रहती है। तूने यह भी सुन रक्खा होगा कि मणि वाला साँप जब चरने या ओस चाटने जाता है तो मणि को बाहिर निकाल कर रख देता है और अपना ध्यान उसी पर जमा रखता है। यह ध्यान के अनेक रूप हैं। तू भी ध्यान करना सीख ले और तब देख तो सही कि किस प्रकार ईश्वर का दर्शन नहीं मिलता! इस ध्यान के सीख लेने के पश्चात् तू संसारी कार वार करता हुआ भी मालिक के ध्यान में निमग्न रहेगा और तेरी सुरत शरीर से अलग थलग दिखलाई देगी।

कुण्डलिया

कमठ[१] दृष्टि जो लावै सो ध्यानी परमान
सो ध्यानी परमान सुरत से अण्डे सेवे ।
आप रहे जल माँह, रेत में अण्डे देवे ॥
जस पनिहारी कलस[२] धर मारग में जावे ।
कर[३] छोड़े मुख वचन सुरत कलसा में लावे॥
फणि[४] मणि धरे उतार आप चरने को जावे ।
वह न ग़ाफ़िल पड़े सुरत मन माँह रहावे ॥
पलटू कारज सब करै सुरत रहै अलगान ।
कमठ दृष्टि जो लावै सो ध्यानी परमान ॥

(६) नाम का सुमिरन

सायंकाल और प्रातः काल सन्ध्या में नाम का सुमिरन करना अच्छा है परन्तु यह केवल साधारण मनुष्यों के लिये है। सुमिरन इस प्रकार हो कि सोते, जागते, उठते, बैठते बराबर होता रहे यदि तू युवक है तो तुझको अवश्य अपनी स्त्री का किसी समय प्रेम और प्यार रहा होगा। क्या तू रात दिन में कभी उसको भूलता रहा है ? कङ्गाल को दस बीस पैसे मिल जाते हैं, वह चलते फिरते उसकी सुध किया करता है। गाय दूर चरने जाती है परन्तु बछड़े को नहीं भूलती। हिरन बाजे के शब्द का प्रेमी है। जहाँ निर्दयी बहेलिये ने बीन बजाया मस्त हिरन शब्द के सुनते ही तड़पता हुआ बेसुध होकर उस बीन के पास पहुँच जाता है। बहेलिया उस को जान से मार देता है परन्तु वह शब्द के प्रेम और रस में अपना प्राण गँवाता है अपने को नहीं बचाता। दीपक जलता है।

नोट—१=कछुआ। २—घड़ा। ३ हाथ। ४ सांप।

जहां प्रकाश फैला पतङ्गा तड़पता हुआ पहुँचा और जलकर उससे एक हो रहा। कीड़े को भृङ्गी लाकर अपने छत्ते में बन्द कर देती है। कीड़े को उसके नाम का सुमिरन रहता है। ध्यान द्वारा वह किसी दिन आप भृङ्गी हो जाता है मछली पानी का सुमिरन करती है। क्षण मात्र के लिये उसे पानी से अलग कर दो वह मर जायेगी। इसी प्रकार तू भी मालिक के नाम का प्रेमी हो जा, फिर देखें तो सही कैसे तुझ को ईश्वर का दर्शन नहीं मिलता।

परम संत कबीर साहिब की वाणी है:—

दोहा

१. सुमिरन की सुध यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निश दिन आठों याम[१] ॥ १ ॥

२. सुमिरन की सुध यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कहैं कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेत सँभाल ॥ २ ॥

३. सुमिरन की सुध यों करो, जैसे नाद[२] कुरंग[३]।
कहैं कबीर बिसरै नहीं, प्राण तजै तेहि संग ॥ ३ ॥

४. सुमिरन की सुध यों करो, जैसे दीप पतंग।
प्राण तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अङ्ग ॥ ४ ॥

५. सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारै आपको, होय जाय तेहि रंग ॥ ५ ॥

६. सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्राण तजै पल बीछुड़े, सत कबीर कह दीन ॥ ६ ॥

यह सुमिरन है। इसी प्रकार तू भी सुमिरन किया कर।

१=पहर। २=शब्द, आवाज़। ३=हिरन।

(७) सुमिरन की सहज युक्ति

खट खट माला फिर रही है। मुख से राम नाम का जाप हो रहा है। मन भीतर ही भीतर आकाश पाताल का चक्कर लगा रहा है। क्या यह सुमिरन है? तू सहज में समझ सकता है कि सुमिरन नहीं है। यह केवल धोका और दिखावा है। तू मन से सुमिरन क्यों नहीं करता? आँख कान मुँह बन्द कर ले। तेरे अन्तर में मालिक के नाम की धुन (ध्वनि) हो रही है। उसको सुरत के कान से सुन। इस सुमिरन से तेरा मन पवित्र और निर्मल होगा। तू प्रकाश स्वरूप मालिक का दर्शन कर सकेगा और अपने आप की समझ तुझे आजायेगी। यह सहज युक्ति है। यह अनहद मार्ग है। यह सुरत शब्द योग का अभ्यास है। बाहिर क्या दिखलाता है? अपने अन्तर में क्यों नाम नहीं जपता? क्षण मात्र तू इस नाम को जप ले, यह वर्षों की पूजा पाट से कहीं बढ़कर होगा, नहीं तो सारा जीवन नष्ट हो जायेगा और कुछ भी हाथ न आयेगा। तेरी आयु कितनी बीत गई! सोच समझ! देख! बाहिर मुखी बातों से अब तक क्या मिला है जो आगे मिलेगा? तू अपने पिछले अनुभव ले लाभ उठा और तेरा भला होगा **कबीर साहिब** की पवित्र वाणी है:—

दोहा

१—सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख से कछू न बोल।
बाहिर का पट देयकर, अन्तर का पट खोल॥ १॥
२—माला फेरत मन खुशी, ता ते कछू न होय।
मन माला को फेरते, घट उजियारा होय॥ २॥
३—माला फेरत युग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनिका[१] डाल दे, तू मन का मनिका[२] फेर॥ ३॥

नोट—१, २=मणिका माला।

४—कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
मन माला को फेरिये, जा में गाँठ न मेर[३] ॥ ४ ॥
५—माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँह।
मनुआँ तो दह दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाँह ॥ ५ ॥
६—तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर इस पलक को, कल्प न पावे सोय ॥ ६ ॥

गुरुनानक साहिब कहते हैं:—

आँख कान मुख बन्द कर, सुन अनहद टनकोर।
नानक सुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहिं भोर ॥

(८) सुमिरन का फल

१—तार सुमिरन का बँधा जब, समझो तब तर जाओगे।
जीते जी सुमिरन भजन और, ध्यान का फल पाओगे ॥२॥
२—तार सुमिरन का न टूटे, नाम की जब लव लगी।
वह तरेगा तारेगा लाखों को, अपने जीते जी ॥ २ ॥
३—तार सुमिरन का न टूटे, तार को रक्खो सँभाल।
अन्त में है मुक्त पद, हो जाओगे इससे निहाल ॥३॥
४—तार सुमिरन का न टूटा, नाम की तारी लगी।
शब्द धुन की गूंज मन को, मीठी और प्यारी लगी ॥४॥
५—तार सुमिरन का न टूटे, सुमिरो साँसों साँस तुम।
राधास्वामी की दया से, करलो पूरी आस तुम ॥५॥

(९) सत्संग की महिमा

विश्वामित्र और **वशिष्ठ** विपरीत स्वभाव के मनुष्य थे। विश्वामित्र कहते थे, "पुरुषार्थ सब कुछ है।" वशिष्ठ का कथन था, "सत्सङ्ग की महिमा अपार है।" दोनों में वाद विवाद होने लगा दोनों ही अपने अपने पक्ष को दृढ़ करने लगे परन्तु कोई बात निश्चित न हो सकी। बात

नोट—३=सुमेरू

बढ़ती ही गई। तब यह सम्मति हुई कि किसी तीसरे के पास चल-कर इस झगड़े को मेटना चाहिये। दोनों ही मान गये और सचाई की खोज में घूमते फिरते कैलाश पर्वत पर शिव जी के पास पहुँचे। उन्होंने दोनों का पक्ष सुना। कहने लगे, ब्रह्मा चार वेदों के जानने वाले हैं। वहां इस झगड़े को निबटायेंगे।" यह दोनों ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "मैं कुछ निर्णय नहीं कर सकता। तुम विष्णु भगवान के पास जाओ।" वहां से यह लोग विष्णु के स्थान पर जिज्ञासू बन कर पहुँचे। विष्णु इनकी बातों को सुनकर मुस्कराये, "इस का उचित निर्णय शेषनाग कर सकेंगे।" जब इन्होंने शेष जी से प्रश्न किया, वह बोले, 'मेरे सर पर सारे ब्रह्माण्ड का बोझ है। मैं दबा हुआ हूँ। तुम में से प्रत्येक मनुष्य बारी बारी से अपने पुरुषार्थ और सत्सङ्ग के प्रताप का बल लेकर इसे उठा ले। तब मैं तुम्हारा झगड़ा मेट दूँगा।" पहिले विश्वामित्र की बारी आई उन्होंने कहा, "मुझको जो कुछ पुरुषार्थ का फल प्राप्त हुआ हो उसके सहारे मैं ब्रह्माण्ड को अपने सर पर लेता हूँ।" अभी शेष नाग ने इनके सर पर बोझ रक्खा ही था कि वह चिल्लाने लगे, "मुझ में ब्रह्माण्ड के उठाने की शक्ति नहीं है।" तब वशिष्ठ बोले, "सत्संग का फल जो कुछ मुझको मिला है मैं उसके हजारवें अंश के बल से इस ब्रह्माण्ड को सर पर ले लूँगा।" इन्होंने ब्रह्माण्ड उठा लिया। उसी समय शेषनाग ने विश्वामित्र जी से कहा, 'देखा! यह सत्संग पुरुषार्थ से बड़ा है। ऐ विश्वामित्र! तुम अपने आप को ज्ञानी कहते हो परन्तु तुम को अब तक सार वस्तु की समझ नहीं है। ऐ अज्ञानी मनुष्य! पुरुषार्थ में दो बातें हैं—'पुरुष' और 'अर्थ'। जहाँ द्वैतभाव होगा वहाँ सच्चा बल नहीं आता। जो अपने को पुरुषार्थी समझते हैं उनमें मेरा और तेरा नाम बना रहता है और यह अबल और निबल करने वाली समझ है परन्तु "सत्संग" का अर्थ है 'सत्

का संग'। आत्मा सत् है। इसमें स्थित हो जाता है उसे फिर कुछ करना धरना नहीं रहता। इस में सारी शक्ति विद्यमान रहती है और वह अहङ्कार से बचकर ईश्वर, ब्रह्म और प्रकृति सब को अपना कर लेता है। यहां तक कि वह इनको अपने से पृथक् नहीं समझता। उसके बल का क्या ठिकाना है? जो सब में है, जो सब से है, जिससे कोई वस्तु पृथक् नहीं है उसको अपने और पराये का भ्रम नहीं होता क्योंकि जगत् में केवल यही एक ऐसा विचार है जो निबलता की ओर ले जाता है। इस लिये तू भली भांति समझ ले कि वह पुरुषार्थ जिसमें अहंभाव और अहङ्कार है वह अधूरा है। तू सत्संग का मांझा देकर अपने हृदय के वेदन को दूर कर दे। जहां तुझ को सत्संग प्राप्त हुआ फिर तू भी वशिष्ठ जी के समान ब्रह्माण्ड के भार को उठा सकेगा और तुझे कुछ भी कष्ट न होगा क्योंकि दुख की जड़ मेरे और तेरे पने में है।" विश्वामित्र जी मन में बहुत लज्जित हुये।

शब्द

१. आके सत्सङ्ग में ले, अपने जनम को तू बना।
त्याग दुर्मति दुर्गती, द्वचिताई और दुब्धापना॥ १॥
२. खाना दिन को रात को, सो रहना तेरा काम है।
है पशू योनी में पशु ज्यों, कर रहा है कल्पना॥ २॥
३. देह नर की पाके, क्या करने लगा है भूलकर।
अन्त में सहना पड़ेगा. यम के हाथों ताड़ना॥ ३॥
४. जैसी आसा तैसी बासा, जैसी मति वैसी गती।
सुन गुरू के बचन, सुन तज झूटे जग की बासना॥ ४॥
५. शब्द का अभ्यास कर, अनुभव का जीवन प्राप्त कर।
राधास्वामी की दया से, कुछ दिनों कर साधना॥ ५॥

(१०) सत्सङ्ग के लाभ

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह एक कथा है परन्तु इस कथा में सच्चाई है। वास्तव में सत्सङ्ग ही सब कुछ है। जिन को सत्सङ्ग मिल जाता है फिर न उनको योग करने की आवश्यकता है न तप करने की। न इन्हें ज्ञान के ग्रन्थों से कुछ लाभ पहुँचता है न तीर्थ व्रत ही कुछ उपयोगी हो सकते हैं। सत्सङ्ग का जो फल है वह अनन्त और अपार है।

जो मनुष्य आग के पास जाता है उसको गर्मी मिलती है। जो पानी के सन्निकट जाता है उसे ठंडक मिलती है। बाग़ के समीप जाने से सुगन्धि और सड़ाइँध के निकट जाने से दुर्गन्धि मिलती है इसी प्रकार जो सत्सङ्ग में रहता है बिना परिश्रम उस में नित्य नित्य किन्तु क्षण क्षण नये नये सद्भाव उत्पन्न होते हैं और वह सहज में आत्मिक आहार पाकर आत्मिक दृष्टि से मोटा और बलवान हो जाता है। सत्सङ्ग से बढ़कर मनुष्य की सुधारने वाली और कोई वस्तु नहीं है।

शब्द

कर सत्सङ्ग असनान तीरथ राज यही (टेक)

१. गङ्गा भक्ति यमुना कर्म्म धारा सरस्वती ज्ञान वही।
न्हाय धोय सूरत भई निर्मल, चिन्ता चित न रही ॥ १ ॥

२. ईड़ा पिंगला नील रंग छवि, सुषमन स्वेत कही।
केसर तिलक भाल दे न्यारा, प्रेम का रूप लही ॥ २ ॥

३. सहस कमल-दल मार ले आसन, ओम का मन्त्र गही।
सुन्न समाध अखण्ड रचा ले, ध्यान का सार सही ॥ ३ ॥

४. भँवर गुफा चढ़ जीत काल को, माया मोह दही।
सत् पुर अलख अगम राधास्वामी धुर पद धाम वही ॥ ४ ॥

५. ऐसा तीरथ मिले भाग से यम की फाड़ बही।
राधास्वामी मौज निरख घट अन्तर, छाछ त्याग ले मही

(११) सत्संग का महत्व

पारस से मिलकर लोहा शुद्ध सोना बन जाता है । गन्दे नदी नाले गंगा से मिलने पर गंगा के समान शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं । खरबूजे को देखकर खरबूजा रङ्ग पकड़ता है । गुलदस्ते के साथ बँधी हुई घास भी शोभा देती है । चन्दन के वृक्ष के समीप यदि नीम और बबूल के वृक्ष भी हों तो इनसे भी चन्दन की सुगन्धित आने लगती है । इसी प्रकार जिनको मौज, मालिक की दया, और संतों के प्रताप से सत्संग का धन प्राप्त हो जाता है वह सहज में तर जाते हैं । साधु के क्षण मात्र के सत्संग से **वाल्मीक** ऋषि हो गये । भक्तों के प्रसाद से **नारद** देवऋषि कहलाये । गणिका **रामानन्द जी** के सत्संग से भक्तिनी बन गई । **सदन** ने कसाई के उद्यम को छोड़ दिया । **नाभा जी** चूढ़े थे । संतों के सत्संत से भक्तमाल के ग्रन्थ कार हुये **तुलसीदास** जी ने जो बड़े कामी थे नरहरि जी की सेवा से यह पदवी पाई कि अपने साथ करोड़ों को तार दिया और अब भी तार रहे हैं ऐ प्राणी ! यदि तू भी सत्संग करेगा तो तेरा बेड़ा पार हो जायेगा ।

शब्द

सत्सङ्गत में अमृत बरसे ! सत् संगत (टेक)

१. मूरख जन कोई मर्म न जाने, यों ही तृष्णा से तरसे । सत्
२. ज्ञानी पिये सुधारस नामा, सतगुरु चरन कमल परसे । सत्
३. सार वस्तु भेद लख पावे, तत्व विवेक का गुर दरसे । सत्
४. शठ सुधरहिं सत्संगत पाई सहजहिसहज काल सरसे । सत्
५. राधास्वामी चरन पकड़ मेरे प्यारे ! छोड़ न यह सिधि निधि करसे । सत्

(१२) सत्संग का फल

एक मनुष्य साधुओं के सत्संग का विरोधी था वह अपने लड़के को कहा करता, "अपाहिज और आलसी साधुओं के सत्संग में कभी न जाया करना।" संयोगवश एक दिन वह ऐसी जगह से निकला जहाँ संत जन बैठे हुये कथा सुना रहे थे और इस विषय पर विचार था कि देवताओं के शरीर की छाया नहीं होती क्योंकि वह सतोगुणी होते हैं। लड़के ने इतनी बात सुनी, फिर कानों में उँगली देकर भाग गया जिसमें और कोई बात सुनाई न दे। एक रात उसके घर एक चोर काली का भयानक रूप बनाकर आया। और लोग तो डर के मारे दबक रहे। लड़के को तो सतसंग की बात याद थी। उसने दीपक के उजाले में काली को ध्यान पूर्वक देखा। उसे छाया दिखलाई दी। वह समझ गया कि यह काली नहीं है किन्तु चोर है। फिर तो उसने उसकी बड़ी दुर्गति की। चोर को मानना पड़ा कि केवल लूटने लिये उसने काली का स्वांग बनाया था। तब जाकर उसकी जान बची। लोगों ने पूछा, "लड़के! तू ने कैसे जाना कि यह चोर है और काली नहीं है?" उसने उत्तर दिया, "एक दिन मैं भूल कर सत्संग की ओर से निकला। साधु महात्मा सुना रहे थे—'देवताओं के शरीर की छाया नहीं होती।' मुझ को यह बात स्मरण थी। मैंने दीपक के उजाले में छाया देखकर समझ लिया कि यह चोर है।"

अब तो सब के कान खड़े हुये। कट्टर पिता ने कहा, "जब क्षण मात्र के सत्सङ्ग का यह फल मिला कि संसारी धन द्रव्य को चोर नहीं छीन सका तो नित्य के सत्सङ्ग से क्या कुछ न प्राप्त होगा!" यह विचार कर वह लोग सबके सब सत्सङ्ग में आने जाने लगे और उनका जीवन सुधर गया।

शब्द

सङ्गत कर गुरु की सखी ! घट विवेक आवे (टेक)
१. अमृत रस बचन भरे, मन आनन्द पावे । सङ्गत कर
२. ज्ञान ध्यान भक्ति सूझे, काल ना सतावे । सङ्गत कर
३. योग युक्ति यत्न मिले, भ्रान्ति भर्म जावे । सङ्गत कर
४. चंचल मन अचल बने, विकलता नसावे । सङ्गत कर
५. राधास्वामी गुरु के गुण को, साँसों साँस गावे । सङ्गत

(१३) गुरु महिमा

दत्तात्रेय ने बहुत से गुरू धारण किये थे । वह आत्रेय ऋषि के पुत्र थे । इनकी माता का नाम अनुसूया था । दुर्वासाऋषि इन के बड़े भाई थे । दत्तात्रेय कुछ ऐसे स्वभाव के मनुष्य थे कि जंगल के वृक्ष, पानी के सोते, सड़कों की कंकड़ियाँ, मछली पकड़ने वाले सारस तक को इनसे बातचीत करने के लिये बोलने की शक्ति मिल जाती थी और वह उनसे आत्म ज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते थे ।

गुरू करने का एक ढङ्ग यह है परन्तु इसके अनुयायी केवल दत्तात्रेय के स्वभाव वाले मनुष्य हो सकते हैं दूसरा ढंग साधारण है मुख से बातचीत करके शिक्षा दी जाती है । इसके अतिरिक्त एक ढंग और भी है जो कुछ कठिन है परन्तु यह अपना काम किये बिना नहीं रहता । इसका फल तत्काल ही मिलता है । वह यह है कि जिस किसी को गुरू धारण किया जाये उसके रूप का पूर्ण ध्यान मन में बसा लिया जाये । धीरे धीरे वह मानसिक मूर्त्ति घट में प्रकट होकर उसे सार वस्तु का सच्चा ज्ञान प्रदान करेगी और वह अच्छा ज्ञानी हो जायेगा यह योग का साधन है । जिसने हमारी पुस्तकों का अवलोकन किया होगा उसको समझाना कठिन

नहीं है। वह जान सकेगा कि इसमें सच्चाई है। ध्यान द्वारा अभ्यासी के हृदय में गुरु स्वरूप के साथ प्रेम और सहानुभूति प्रकट होती है। उसके सारे भाव, संस्कार और विचार अभ्यासी में आप ही आप आ जाते हैं और उसे ज्ञान हो जाता है। **पतञ्जलि ऋषि** के "संयम" का भावार्थ और मन्तव्य यही है। विचार शक्ति से मनुष्य को यों ही बड़ी बड़ी बातों का ज्ञान हो जाता है। **बुद्धदेव** ने एक जगह कहा था, "ऐ आनन्द ! प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी मण्डल का वासी हो किसी जाति का हो, यदि वह बुद्धि का साधन करता है तो मेरा शिष्य है।"

संसार में कुछ लोगों ने इस प्रकार भी गुरू धारण किया है। इन सब का कृतज्ञ होना सभ्यता का उत्तम लक्षण है।

(१४) सच्चा उदाहरण

जिस समय द्रोणाचार्य जी पाण्डवों और कौरवों को विद्या सिखा रहे थे एक भील के लड़के ने बाण विद्या सीखना चाहा। भील को राजकुमारों के साथ शिक्षा देना स्वीकार नहीं था। वह बेचारा लौटकर चला गया परन्तु अपने धुन का पक्का था। उसने जंगल में एक फूस का झोंपड़ा बनाया और उसमें **द्रोणाचार्य** की मिट्टी की मूर्त्ति स्थापित की और उन्हीं का ध्यान करने लगा। ध्यान शक्ति द्वारा बाण विद्या के जितने कर्तव्य थे सब उसे पूर्ण रीति से आगये। अभ्यास करते करते वह बाण विद्या में निपुण हो गया।

एक बार **द्रोणाचार्य** जी अपने शिष्यों को साथ लिये हुये जंगल से होकर निकले। नदी के किनारे हिरन पानी पी रहा था। शिष्यों ने आपस में कहा, क्या हम में से कोई मनुष्य ऐसा है जो हिरन को इस प्रकार बाण मारे कि वह अपनी जगह से हिल न सके और घायल भी न हो।" किसी को भी साहस नहीं हुआ।

द्रोणाचार्य जी ने कहा, "अर्जुन कर सकता है। वह इस विद्या में निपुण है।" परन्तु अर्जुन से भी कुछ न बन आया संयोगवश वह भील का लड़का इन बातों को सुन रहा था। उसने एक सरकंडे का तीर उठाया और इस प्रकार धनुष को साधकर मारा कि सरकंडा हिरन के मुँह तक पहुँच कर कई टुकड़ों में टूट गया और हिरन का मुँह उससे भर गया। हिरन हक्का बक्का होकर खड़ा होगया। राजकुमारों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। ऐसा दृश्य किसी ने आज तक नहीं देखा था। अर्जुन अपने मन में लज्जित हुआ। उसने भील से पूछा, "तेरा गुरु कौन है?" उत्तर मिला, "द्रोणाचार्यजी।" उस समय अर्जुन को महा क्रोध हुआ। उन्होंने द्रोणाचार्य से कहा "महाराज आपने कहा था कि अर्जुन बाण विद्या में निपुण हो गया है। मुझसे आपने यह कर्तव्य छुपा रक्खा और अपने शिष्य भील को सिखा दिया। वह कहता है—मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ।" द्रोणाचार्य भी चकित हुये। उन्होंने भील के लड़के को बुला भेजा। उसने आते ही प्रणाम किया। द्रोणाचार्य ने पूछा, 'तेरा गुरु कौन है?" उसने कहा, "महाराज! आप ही मेरे गुरु हैं।" इन्होंने पूछा, "मैंने तुझे कब और कैसे चेला बनाया?" उत्तर मिला, "मैंने अपनी ध्यान शक्ति से आपको गुरु धारण किया और ध्यान द्वारा मुझे विद्या प्राप्त हुई।" द्रोणाचार्य ने कहा, गुरु दक्षिणा में तूने कुछ नहीं दिया। अपने दाहिने हाथ का अँगूठा काट कर दे दे।" उसने अँगूठा काट कर दे दिया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा, "अब तू बाण विद्या में अद्वितीय और निपुण है।" इस कथा से भली भाँति विदित है कि केवल ध्यान द्वारा मनुष्य कितनी ऊँची पदवी प्राप्त कर सकता है। जो एक दम संसारी हैं और जिनकी दृष्टि अभी ऊँची नहीं हुई है। वह इसको न समझ सकेंगे, परन्तु ध्यान शक्ति की महिमा जानने

वाले मनुष्य के लिये इसका समझना अति सुगम है। तुम ध्यान के साधन और अभ्यास से जो चाहो सीख सकते हो।

(१५) एक गुरू

गुरू एक होता है। मालिक एक होता है। एक चेला दो गुरू की भक्ति नहीं कर सकता और न एक सेवक दो मालिकों की सेवा कर सकता है। यहाँ जो है वह एक ही एक है। जिसका सम्बन्ध एक से है वह प्रसन्न रहता है और जिसका सम्बन्ध दो से होता है उसमें चंचलता होती है। यह जीवन व्यवहार के अनुभव की बातें हैं। यदि इस लोक के व्यवहार में यह दशा है तो परलोक और धार्मिक कार बार में भी यही बात है। इष्ट जब होगा एक ही होगा। दो इष्ट कभी नहीं होना चाहिए नहीं तो वह इष्ट नहीं कहलायेंगे।

तुम सन्तों के सतसङ्ग से लाभ उठाओ। जहाँ कहीं अच्छी बातें मिलें उनको सीखो और अपने निज अनुभव को बढ़ाओ परन्तु यह सब कुछ एक गुरू के ध्यान द्वारा प्राप्त किये जायें तब तो लाभ होगा वरन् द्वचिताई और अशान्ति फैलेगी और लाभ की जगह हानि उठानी पड़ेगी।

शब्द

गुरुदाता के चरन चित जोड़ रहूँ
जोड़ रहूँ मन मोड़ रहूँ—गुरुदाता (टेक)

१. सोवत जागत उट्ठत बैठत, रहै गुरू का ध्याना।
एक भाव हिये अन्तर राखूँ, और सकल बिसराना ॥१॥

२. विद्या बुद्धि विवेक बिचारा, गुरुगम के अनुसारा।
यहि बिधि तरूँ सहज भवसागर, तारूँ कुल परिवारा ॥२॥

३. एक रूप नयनों में समाया, और नज़र नहिं आवे।
जहां जहां देखूँ गुरु की लीला, समझत मन हरषावे ॥३॥

४. सुनूँ तो गुरु का कथन निरन्तर, बोलूँ तो गुरु बानी।
बोल बोल सुन सुन कर चिन्तन, रहूँ सदा निर्वानी ॥४॥
५. मनुआं मेरा है बड़भागी, निश्चल अचल अमानी।
सबको त्याग चरन गुरु लागा, हो राधास्वामी अभिमानी

(१६) गुरू कहते किसको हैं ?

गुरू वास्तव में किसी विशेष मनुष्य का नाम नहीं है और न शरीर को गुरू कहा जाता है। गुरु वास्तव में आत्मिक और मानसिक आदर्श का नाम है। शरीर कभी भी शारीरिक त्रुटि से बच नहीं सकता। शरीर नाशवान है और इस दृष्टि से वह गुरू माने जाने के योग्य नहीं है। जो लोग गुरू करते हैं या गुरू का इष्ट बांधते हैं वह शारीरिक ध्यान से ऊँचे रहते हैं। हां गुरुस्वरूप को अपने ध्यान, भाव और विश्वास का केन्द्र और आधार बना कर उसकी सहायता से धीरे धीरे उस मानसिक आदर्श के प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं जो उनके अपने हृदय में विद्यमान है और जिसका ज्ञान उनको नहीं है। गुरु के वचन, गुरू के सत्सङ्ग और प्रेम से उनके मन के पर्दे एक एक करके फटते जाते हैं और तब वह उसी मानसिक आदर्श को अपने ही अन्तर में देखने लगते हैं। गुरू नाम है पूर्ण का जिसमें किसी प्रकार की न्यूनता या अल्पज्ञता नहीं है। बाहिरी गुरू की सहायता से धीरे धीरे इसकी समझ आने लगती है। भक्ति और ज्ञान का मन्तव्य यही है कि मनुष्य पूर्ण हो जाये इस पूर्णता की प्राप्ति एक दम नहीं होती। पहिले कोई न कोई आधार बना कर सहायता लेनी पड़ती है। यह आधार गुरू है। यह आधार होते हुए ध्यान द्वारा इतना बढ़कर व्यापक हो जाता है कि उसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता और वह दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही में प्रतीत होने लगता है।

और जितना ही इस प्रतीत में हम निमग्न होते हैं उतना ही हम पूर्ण बनने के अधिकारी हो जाते हैं।

बन्धन से छुड़ाना गुरु का काम है। इसीलिये गुरु को बन्दी छोर और मुक्ति दाता कहते हैं। जिसमें यह गुण हो वही गुरु है। गुरु निस्वार्थ होते हैं। वह अपने लाभ का ध्यान नहीं रखते। यही उनकी बड़ाई है। कबीर साहिब की वाणी है:—

दोहा

१. सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करें अपराध।
कहैं कबीर वह कब मिलें? परम सनेही साध॥ १॥
२. मान अपमान न चित धरें, औरौं को सम्मान।
जो कोई आसा करै, उपदेशैं तेहि ज्ञान॥ २॥
३. साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ पर छालूँ अङ्ग।
कहैं कबीर निर्मल भया, साधू जन के सङ्ग॥ ३॥
४. अलख पुरुष की आरसी, साधुन ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को, इन ही में लख लेह॥ ४॥
५. पारस में और संत में, यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करै यह कर लें आप समान॥ ५॥

(१७) भक्त की महिमा

महाभारत के पश्चात् युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। एक घंटा लटक रहा था। कृष्ण भगवान बोले, "ऐ धर्मराज! तुम्हारा यज्ञ उस समय पूर्ण होगा जब कोई भक्त इस यज्ञ में आकर भोजन करके प्रसन्न होगा। उसकी पहचान यों होगी कि घण्टा "आप ही आप बजने लगेगा।" यज्ञ रचा गया। ऋषि, मुनि, साधु, ब्राह्मण सब आये। सबका उचित आदर सत्कार किया गया। सबको भोजन कराया गया। सबने एक स्वर से युधिष्ठिर को आशीर्वाद

दिया परन्तु घण्टा न बजा धर्मराज ने पूछा महाराज ! क्या इस महान् यज्ञ में एक भी भक्त नहीं था ? क्या यह ऋषि मुनि ईश्वर विमुख हैं ? कृष्ण जी हँसे, "हाँ ! ऐसा ही है।" तब तो युधिष्ठिर निराश होकर कहने लगे, बड़े शोक की बात है कि यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ । महाराज ! कृपा करके किसी को बुलाइये।" भगवान ने कहा, यहाँ से पाँच कोस पर एक चाण्डाल श्वपच रहता है वह ईश्वर का भक्त है । उसको बुलाओ।" भीम, नकुल, सहदेव बारी बारी से उसे बुलाने के लिये गये परन्तु वह नहीं आया और यही कहता रहा, "मैं राज धन नहीं खाता।" अन्त में अर्जुन गये। और अपने साथ रथ लेजाकर कहने लगे, "महाराज ! मैं कृष्ण के नाम पर कृष्ण की आज्ञा से आप को प्रीति भोजन का निमन्त्रण लाया हूँ।" श्वपच कुछ नहीं बोला, उठ खड़ा हुआ और सीधा यज्ञ शाला में चला आया। आते ही उसने भगवान को नमस्कार किया कृष्णजी ने उसे आदर सत्कार के साथ बिठाया। युधिष्ठिर और द्रौपदी ने भी उचित सन्मान किया। भोजन की सामिग्री सामने रक्खी गई। श्वपच ने भोजन किया परन्तु फिर भी घण्टा नहीं बजा । तब युधिष्ठिर सोच में पड़ कर भगवान की ओर देखने लगे । यह मुस्कराये और कहने लगे, "इस में द्रोपदी का दोष है क्योंकि जब वह सब व्यञ्जनों को एक में मिलाकर खाने लगा तो इसके मन में घृणा उत्पन्न हुई।" द्रौपदी लजाई क्योंकि सचमुच इसने अपने मन में कहा था, "यह जाति का श्वपच है । इसे खाने का भी ढंग नहीं आता।' भगवान की आज्ञा से फिर भोजन सामने लाया गया। द्रौपदी को कृष्णकी बातों में विश्वास था। इस बार उसने बड़े ही प्रेम से भोजन कराया और हाथ से पंखा झलती रही। जब श्वपच खा चुका घण्टा तीन बार 'टन' 'टन' बजा। सब के सब प्रसन्न हो गये। यह भक्त की महिमा है। मालिक को केवल भक्ति प्यारी है। वह जो विदुर के घर के साग को दुर्योधन के पकवान

से उत्तम समझता है, और ऋषियों की भेंट को स्वीकार न करके शिवरी भीलनी के जूठे बेर को प्रेम से खाता है वह भक्ति का भूका है और केवल भक्त को मिलता है। इसलिये भक्ति की बहुत बड़ी महिमा है। **पलटू साहिब** अपनी कुण्डलिया में इस प्रकार कहते हैं:—

कुण्डलियाँ

साहिब के दरबार में केवल भक्ती प्यार
केवल भक्ती प्यार, गुरू भक्ती से राज्ञी।
तजा सकल पकवान, खाया दासी सुत भाजी॥
जप तप नेम अचार करे, बहुतेरा कोई।
खाये शिवरी के बेर, मुये सब ऋषि मुनि रोई॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ, बटोरा सकल समाजा।
मर्दा सबका मान, श्वपच बिन घण्ट न बाजा॥
पलटू ऊँची जाति का, मत कोइ करे हंकार।
साहिब के दरबार में, केवल भक्ती प्यार॥

(१८) बिदुर जी की भक्ति

भगवान कृष्ण युधिष्ठिर की ओर से राजदूत बनकर दुर्योधन की सभा में समझाने बुझाने के लिये गये थे। दुर्योधन ने इनका अपमान किया। कृष्ण जी को क्रोध आया और बुरा भला कह सुनाया धृतराष्ट्र ने इन्हें मीठी मीठी बातों में फुसला कर अपने यहाँ भोजन कराना चाहा। कृष्ण ने कहा, "दुर्योधन! यह सच है कि मैं तेरा सम्बन्धी हूँ परन्तु इस समय मेरी हैसियत कुछ और है। मैं राजा युधिष्ठिर का राजदूत बन कर आया हूं। तू ने केवल मेरा ही नहीं किन्तु युधिष्ठिर का अपमान किया, मैं तो मान अपमान की ओर भी ध्यान नहीं देता परन्तु राजा के प्रतिनिधि होने के कारण तेरे अनादर को सह नहीं सकता।"

यह कहकर वह अपने स्थान पर चले आये। भूखे थे, देर से कुछ खाया पिया नहीं था। वहाँ से उठकर बिदुर जी के घर गये जो एक दासी के लड़के थे। विदुर जी संयोग वश घर पर नहीं थे। उनकी स्त्री नङ्गी नहा रही थी। इस को कृष्ण से बहुत प्रेम था। कृष्ण को पता नहीं था कि वह नहा रही है? यह घर के भीतर चले गये। बिदुर की स्त्री ने उन को देख लिया। प्रेम में नग्न अवस्था को भूलकर अपने भाग्य को सराहने और कृष्ण की अपार दया का यश गाने लगी। कृष्ण अब वहाँ से टल नहीं सकते थे क्योंकि प्रेम दोनों ओर से होता है। वह स्त्री नहाती जाती थी और साथ ही बेसुध होकर मुस्कराती हुई बात भी करती जाती थी। कृष्ण ने कहा, "भाभी मैं! बहुत भूखा हूँ। कुछ खाने को दे।" विदुर के घर में क्या था! राजा का सम्बन्धी होने पर भी धनहीन था और परिश्रम से कमाकर अपना पेट पालता था। संयोगवश जहाँ वह स्त्री नहा रही थी कुछ पके हुये केले रक्खे हुये थे। स्त्री ने केले उठाये। उन्हें छीलकर गूदा तो फेंकती जाती थी और छिलके कृष्ण को देती थी। कृष्ण प्रसन्नता के साथ उसे खाते जाते थे क्योंकि इस स्त्री के विलक्षण प्रेम ने छिलके को अमृत फल बना दिया था। ऐ प्रेम! तू क्या नहीं कर सकता? तू विष को अमृत बना देता है।

कृष्ण हंस हँस कर सारे छिलके खागये। इतने में विदुर जी भी आ पहुँचे। देखते क्या हैं कि स्त्री नङ्गी खड़ी है। आश्चर्य के साथ कहने लगे, "अरी! तू क्या कर रही है? महा प्रभु को छिलके खिला रही है और गूदा अलग फेंक रही है!" अब स्त्री को अपनी भूल का पता लगा। आँखें खुल गईं, मन में बहुत ही दुखी हुई। फिर बिदुर बोले, "तू नङ्गी क्यों है?" स्त्री नङ्गी थी, प्रेम के तरङ्ग में उसे कुछ ध्यान नहीं। वह बहुत ही लज्जित हुई और सर नीचा करके घर में भाग गई। कृष्ण बोले, "भाई विदुर!

तुमने पवित्र प्रेम को धक्का पहुँचाया। यह छिलके मुझे अमृत तुल्य स्वादिष्ट लगते थे। तुमने भूल की।"

विदुर समझ बूझ वाला था और भक्ति भाव के मर्म को भली भाँति जानता था। वह प्रार्थना करने लगा। इतने में उसकी स्त्री कपड़े पहिन कर सामने आई और पति से कहने लगी, "महाराज! मैं कृष्ण को देखते ही प्रेम में बेसुध होकर अपने को भूल गई थी। मैं एक दम अचेत सी होगई थी।" विदुर कुछ कहने ही को थे कि कृष्ण जी फिर बोले, "भाभी! अब तक मेरी भूख नहीं गई। कुछ और खाने को ला दे।" इसने उबाला हुआ साग जिसमें नमक भी नहीं पड़ा था लाकर सामने रख दिया और कृष्ण ने उसी को बड़े प्रेम के साथ खाया और प्रसन्न होकर विदुर और उसकी स्त्री दोनों को आशीर्वाद दिया।

भक्ति इस प्रकार बेसुधी की अवस्था है और धन्य हैं वह लोग जिनको मालिक के चरणों में ऐसी भक्ति प्राप्त होती है।

दोहे

प्रेमी ढूंढत मैं फिरूँ, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी सो प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सत् गुरु देश॥
पिया रस पिया तब जानिये, उतरे नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहे, पिये अमी रस सार॥

कुण्डलियाँ

लगी लगन उस पीय से अब नहिं टूटे तार।
अब नहिं टूटे तार प्रीत प्रीतम से लागी।
जग की आस भरोस हिये से अपने त्यागी॥
त्याग के तप से तपी, तपी मैं दिन और राती।
हृदय विरह की आग तपे ज्यों दीपक बाती॥

प्रीति रीति अति कठिन है कोइ सके नहिं टार।
लगी लगन उस पीय से अब नहिं टूटे तार॥

(१६) शिवरी की कथा

शिवरी जाति की भीलनी थी। जंगल की रहने वाली! कुरूपा और असभ्य! परन्तु उसमें मालिक की भक्ति थी। बचपन में माता पिता ने विवाह करना चाहा परन्तु मीराबाई के सदृश उसके सर पर भी प्रेम का भूत सवार था। भाग आई और ऋषि आश्रम में आकर रहने लगी। नित्य ही प्रातः काल उठकर एक तालाब में स्नान करके ऋषियों के आने जाने की राह को झाड़ू से झाड़ दिया करती थी और एक फूस के झोंपड़े में रहकर मालिक का भजन और स्मरण करती रहती थी। एक दिन जब वह नहाने गई किसी ब्राह्मण की दृष्टि उस पर पड़ी। उस मूर्ख ने शिवरी को प्रातःकाल देखना अशुभ समझा। उसे एक लात कस कर मारी और तालाब में नहाने से रोक दिया। बेचारी भीलनी उस दिन से कभी तालाब पर नहीं गई परन्तु वह दिन निकलते ही राह में झाड़ू दे दिया करती थी एक दिन फिर किसी ब्राह्मण ने उसे प्रातःकाल ही देखा और उसे मारा पीटा। फिर **शिवरी** ने झाड़ू देना भी छोड़ दिया और झोंपड़े में अकेली रहकर ईश्वर का भजन सुमिरन करने लगी। किसी ने इससे कहा, **"भगवान रामचन्द्र जी** प्रकट हुये हैं और वह इधर आने वाले भी हैं।" प्रेम के वश यह भोली भाली भीलनी नित्य दोपहर के समय जंगल में चली जाती और मीठे मीठे बेर चख कर दोने भर भर कर ले आती। इसका विचार था कि "जब महा प्रभु आयेंगे तो उनको यह बेर खिलाऊँगी।" नित्य दोपहर को इसी प्रकार बेर चुना करती।

प्रेम के भाव, प्रेम के बल और प्रेम की आकर्षण शक्ति को कौन जान सकता है ? यह बिजली की धार से भी महा बलवान है। इसमें अनन्त और अपार आकर्षण शक्ति है। जो इसको जानते हैं वह भ्रम और भ्रान्ति में नहीं पड़ते। रामचन्द्र जी आये, न किसी ऋषि के आश्रम में गये न किसी मुनि के स्थान पर पधारे। वह—सीधे प्रेम के रास्ते से खिंचे हुये शिवरी के पास चले आये। शिवरी दर्शन पाते ही प्रेम में मग्न होकर आँखों से आँसू बहाते हुये परिक्रमा करने लगी।

प्रेम छुपाया ना छुपे, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोले नहीं, नैन देत हैं रोय॥

आँख से आँसू बह रहे हैं, मुख से कुछ बोला नहीं जाता। आत्मा आत्मा से मिलकर एक हो रहा है। मन मन के साथ गुथा हुआ है। प्रकाशमय दीपक के चारों ओर तड़पता हुआ पतङ्गा प्रेम में मग्न होकर परिक्रमा कर रहा है। जिसको लोग आग समझते हैं वह उसकी दृष्टि में कुछ और ही वस्तु है। जिस जलजाने को मृत्यु समझा जाता है वह उसके लिये सच्चा जीवन है। वह न बोलता है न चालता है, सीधा दीपक पर गिरता है। देखो! परस्पर प्रेम का नियम दीपक को अपनी लौ टेढ़ी करने के लिये और प्रेमी को गोद से चिमटाने के लिये प्रेरित करता है। मक्खी और पतङ्गे चाहे एक ही जाति के हों परन्तु लालची और स्वार्थी मक्खी पतङ्गा नहीं बन सकती।

दोहा

जब लग मरने से डरै, तब लग प्रेमी नाँह।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माँह॥
प्रेम पियाला जो पिये, सीस दक्षिना दे।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का ले॥

कबीर भट्टी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सर सौंपै सो पियेंगे, नातर पिया न जाय ॥
कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रम रहा. और अमल क्या खाय॥
सीस उतारै भुईं धरै, ऊपर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥

शिवरी ने बड़े ही प्रेम और भक्ति से झूठे बेर के दोने भेंट किये और भगवान् रामचन्द्र जी ने इसी प्रेम और भक्ति से स्वीकार किया। प्रेमी और प्रीतम दोनों की जाति एक है। ज्ञानियो ! यह सच्चा अद्वैतवाद है। यहाँ आकर भेद भाव नहीं रहता। यदि सच्चे अद्वैत वाद की शिक्षा लेनी है तो इस भीलनी के चरणों में आकर सीखो।

दोहे

प्रेम पावरी पहिन कर धीरज काजल दे।
सील सिंदूर भराय कर,यों पिया का सुख ले॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक मियान में दो खड्ग,देखा सुना न कान ॥

यह सच्चा अद्वैत है। यह "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" का मार्ग है।

मैली कुचैली नीच जाति वाली, कभी न नहाने वाली भीलनी इस प्रकार राम का अङ्ग बन गई। किसको साहस है कि इन महान आत्माओं को एक दूसरे से अलग कर दिखाये। यह दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। नाम मात्र भी भेद नहीं रह जाता।

कुण्डलियां

प्रेम में वरण विवेक नहिं, नहिं अचार विचार
नहिं अचार विचार, कठिन है प्रेम का नाता।
प्रेम पन्थ की डगर, कोइ कोइ बिर्ला जाता॥
बिर्ला जाता कोई, वरण और कुल को तज के।
प्रभु को ले अपनाय, नाम उस प्रभु का भज के॥
खाये बेर प्रसन्न हो, शिवरी से कर प्यार।
प्रेम में वरण विवेक नहिं, नहिं अचार विचार॥

यह ईश्वर का साक्षात्कार है। यह पुस्तकों का विषय नहीं है। यह कुछ और ही वस्तु है।

(२०) हनुमान जी की कथा

कहा जाता है कि एक बार भरी सभा में हनुमान जी को मोतियों की माला दी गई। आप इसके एक एक मोती को तोड़ तोड़ कर देखने लगे। सब लोग आश्चर्य करने लगे। बहुतों ने हँसी में कह भी दिया, "बन्दर ही तो है। इसे मोतियों की क्या परख है।" सभा में एक नवयुवक भी बैठा हुआ था। उसने पूछा, "महाराज! यह आप क्या करते हैं? ऐसे बहुमूल्य हार को क्यों नष्ट कर रहे हैं?" हनुमान् जी ने झट उत्तर दिया "मैं हर दाने में देखता हूँ कि इसमें राम नाम है या नहीं? यदि राम नाम है तो यह अवश्य अमूल्य वस्तु है नहीं तो यह मेरे लिये व्यर्थ और निरर्थक है।" नवयुवक बोला, "इससे तो यह प्रतीत होता है कि तुम्हारे सारे शरीर में राम नाम लिखा हुआ है।"

हनुमान जी को क्रोध आगया। अपने बड़े बड़े नखों से सारे शरीर की खाल उधेड़ कर फेंक दी और कहा, "देखो! हर

जगह राम नाम लिखा हुआ है।" सब लोग देख कर दंग रह गये। शरीर से रुधिर अधिकता के साथ निकला था इस लिये सेंदुर और घी मिलाकर उस पर लेप कर दिया गया। यही कारण है कि सनातन धर्म्मी हिन्दू अब भी हनुमान जी की मूर्ति को सेंदुर से रँगते हैं।

यह केवल कथा है परन्तु सार ग्राही के लिये बहुत ही उपदेश जनक और शिक्षा प्रद है। हनुमान जी रामचन्द्र जी के बहुत बड़े भक्त थे। मालिक की सेवा के अतिरिक्त और किसी ओर ध्यान नहीं देते थे।

जो ईश्वर की उपासना करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि किसी एक भाव को लेकर रात दिन पकाते रहें जिसमें वह नस नाड़ियों के साथ शरीर का अङ्ग सङ्ग होजाये और वही उनका प्राण और आधार बन जाये तब उपासना और सुमिरन भजन का कुछ आनन्द भी मिलेगा नहीं तो केवल माला फेरने से क्या लाभ है ?

कुण्डलिया

लव लागी तब जानिये तार टूट नहिं जाय
तार टूट नहिं जाय, एक रस समय बितावे।
दुख सुख के व्यवहार भाव को, मन नहिं लावे॥
अटल अचल दृढ़ प्रेम, मगन घट अन्तर रहना।
सुने न और की बात, न अपने मन की कहना॥
जीते सुमिरै पीय को, मर कर पीय समाय।
लव लागी तब जानिये, तार टूट नहिं जाय॥

(२१) रैदास भक्त की प्रार्थना

रैदास भक्त जाति के चमार थे परन्तु ईश्वर के धार्मिक राज्य में यह महात्मा हज़ारों ब्राह्मणों से भी अधिक माननीय

और पूजनीय थे। आप इस प्रकार ईश्वर से प्रार्थना करते हैं:—

१. चित्त सुमिरन करूँ नयन अवलोकनो,
श्रवण वाणी सुजस पूरा राखूँ।
मन सो मधुकर करूँ, चरन हिर्दय धरूँ,
रसनामृत राम नाम भाखूँ॥
२. मेरी प्रीत गोविन्द से जिन घटे।
मैं तो मोल मँहगे लई जीय सहटे॥
३. साध संगत बिन भाव नहिं उपजे,
भाव बिन भक्ति कैसे होय तेरी।
कहै रैदास एक विनती हरी पै,
पैज राखो राजा राम मेरी॥

इस भजन का अर्थ करना इतना कठिन नहीं है परन्तु इसके यथार्थ को ज्यों का त्यों समझना महा कठिन है फिर भी हम भाषा में अर्थ समझाने का यत्न करते हैं:—

'(१) चित्त से सुमिरन करूँ। आँखों से दर्शन करूँ। कान और जिह्वा को इस प्रकार वश में रक्खूँ कि वह सुयश से भरपूर रहें। मन को (चरण कमल का) भँवरा बनाऊँ। (आपके) चरण का हृदय में ध्यान रक्खूँ और राम नाम जो जिह्वा का अमृत है उसका जाप करता रहूँ।"

"(२) (मेरी प्रार्थना यह है (कि गोविन्द (के चरणों) में मेरा प्रेम कम न हो। मैंने (इनके चरणों के) प्रेम को महंगे मोल लिया है। जान देकर तब पाया है।"

"(३) साध को सङ्गत के बिना भाव नहीं उत्पन्न होता बिना भाव के तेरी भक्ति नहीं हो सकती (इसलिये) रैदास प्रभु से एक विनती करता है कि "हे राजाराम ! तुम ही मेरी सुध राखो।

कैसी अच्छी वाणी है ! शोक है ऐसे उत्तम भजन अब कहीं

सुनने में नहीं आते। रैदास जी के कुछ शब्द गुरू नानक साहिब के आदि ग्रन्थ में सुरक्षित किये गये हैं।

कुण्डलिया

लगी लगन छूटे नहीं कितनो करो उपाय
कितनो करो उपाय, रोग यह बड़ा है भारी।
सहै कलेजे घाव लगी जब बिरह कटारी॥
घायल की गति लख कौन जो घाव न खावे।
अन्तर में है चोट कोई कैसे दरसावे॥
प्रेम का मारा ना जिये सिसक सिसक दम जाय।
लगी लगन छूटे नहीं कितनो करो उपाय॥

(२२) तीन प्रकार के बोझ

राजपूताना के किसी जंगल के एक गाँव में लुटेरे रहते थे जो इक्के दुक्के राहियों और पथिकों को लूट लिया करते थे। संयोग वश वहाँ एक साधू आ गया और वृक्ष के नीचे आसन जमाकर उपदेश सुनाने लगा। लुटेरों के जत्था के लोग भी उसके पास आये और प्रेम से उसकी बातें सुनने लगे। साधू ने अहिंसा के विषय में बहुत ही प्रभावशाली और हृदय बेधक बचन कहे। जब साधू वहाँ से चलने को हुआ, लुटेरों के मुखिया ने उससे पूछा, "क्या मेरे ऐसे अधम और पापी का भी किसी प्रकार उद्धार हो सकता है?" साधू ने कहा, "क्यों नहीं! परन्तु तुझको मेरी बात अवश्य माननी होगी।" उसने स्वीकार कर लिया और साधू के पीछे पीछे चला।

थोड़ी दूर जाने पर जब वह एक पहाड़ी पर चढ़ने लगे, साधू ने उसे आज्ञा दी, "तीन भारी भारी पत्थर सर पर उठा ले।" लुटेरे ने वैसा ही किया। साधू के सर पर कोई बोझ नहीं

था। वह तो आनन्द से गीत गाता हुआ ऊपर चढ़ने लगा परन्तु लुटेरा पत्थरों के बोझ से दबा जाता था। इसने कहा, "महाराज! मैं आप के साथ नहीं चढ़ सकता बोझ भारी है।" साधू ने उत्तर दिया, "अच्छा! एक पत्थर फेंक दे।" उसने फेंक दिया। कुछ दूर गया था कि फिर से थक जाने की बात कही। साधू ने फिर एक पत्थर फिंकवा दिया। अब एक पत्थर का बोझ उसके सर पर रह गया था जो आगे की ओर बढ़ने नहीं देता था। लुटेरा महा दुखी हुआ। तब साधु ने दया करके कहा, "इसको भी फेंक दे।" इस पत्थर के फेंकते ही वह भी उछल कर साधु के साथ हो रहा और दोनों आनन्द के साथ पहाड़ी पर चढ़ गये। अब पहाड़ की चोटी पर बैठकर बातें करने लगे। साधू ने कहा, "जो लोग बोझ से लदे हुये हैं वह पहाड़ पर नहीं चढ़ सकते। जैसे संसार की राह में नदी नाले और पहाड़ आदि पड़ते हैं वैसे ही परमार्थ के मार्ग में भी इनसे काम पड़ता है। इस राह में बोझ से लदे हुये मनुष्य चल नहीं सकते। जिस प्रकार तू तीन पत्थरों को फेंक कर सुगमता से पहाड़ की चोटी पर चढ़ आया है इसी प्रकार आत्मिक आदर्श को भी बोझ से हलका होकर प्राप्त कर सकता है।"

लूटेरे ने पूछा, "मेरे ऊपर कौन से बोझ हैं?"

साधु—बोला, तू लदा है अहङ्कार से, तू लदा है मनके बोझ से, तू लदा है बुद्धि के भार से इनको उतार कर फेंक दे फिर तू साधू बन जायेगा। तू लदा है स्थूल शरीर के बोझ से, तू लदा है कारण शरीर के बोझ से। इनको परे फेंक फिर तू साधू बन जायेगा। तू लदा है अज्ञान से, तू लदा है कर्म से तू लदा है वासना से। इनको छोड़ दे तू लदा है अपने बोझ से, तू लदा है अपने समुदाय के बोझ से इनको हटा दे तू साधू हो जायेगा। यह तीनों बोझ तुझको दुखी कर रहे हैं, इसलिये तू साधू नहीं हो सकता। इस उपदेश को सुन कर तेरा कल्याण होगा।"

लुटेरा—"परन्तु मैं क्या करूँ ! कैसे इनको परे फेंकूँ ?"

साधू—"पहिले बुरे कर्मों को शुभ कर्मों से निबल कर दे। फिर शुभ अशुभ दोनों कर्मों से अलग हो जा। फिर भक्ति और उपासना से मनके मलीन भावों को अच्छे भावों से बदल दे। फिर इन दोनों से अलग हो जा। तत्पश्चात् ज्ञान द्वारा द्वैत भाव को अद्वैत भाव से दूर हटा, फिर दोनों ही का त्याग कर दे। तेरा कल्याण होगा। यह साध के लक्षण हैं।"

लुटेरा—"यह मैं क्यों करूँ ?

साधू—"क्योंकि तेरे रूप पर तीन प्रकार के बोझ हैं—मल, विक्षेप और अज्ञान। इन्हीं तीनों के कारण तुमको अपना रूप दिखलाई नहीं देता। जहाँ एक बार तूने अपना स्वरूप देख लिया फिर तुमको करना धरना कुछ न रहेगा और तू मोक्ष स्वरूप हो जायेगा।"

लुटेरा—"मल, विक्षेप और अज्ञान क्या हैं ?"

साधू—"यह तीन गहरे परदे हैं। मल कहते हैं मैल को मन पर इसकी तह गहरी जमी है। विक्षेप बोलते हैं चंचलता को जिसके कारण सार वस्तु की समझ नहीं आती। अज्ञान नाम है भ्रम का। यही तुझको जानने नहीं देता कि आत्मा क्या है ?

लुटेरा—"इनके दूर करने की युक्ति बताइये।"

साधू—"सबसे सहज युक्ति सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग में जाकर श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर तब तुझे सत् का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।"

लुटेरा—इन शब्दों की कुछ और व्याख्या कर दीजिये।"

साधू—"सत्सङ्ग के बचनों का सुनना श्रवण है। उन पर विचार करना मनन है। इन बचनों का जीवन व्यवहार में बर्तना और साधन सम्पन्न होना निदिध्यासन है।"

लुटेरा—"महाराज ! आप ने बहुत ही सहज युक्ति बताई।

आप सत्स्वरूप हैं इसलिये आप ही का सङ्ग सतसंग है। आज ही से मैं आपकी सेवा में रहूँगा।"

साधू—"बहुत अच्छा!"

थोड़े ही दिनों में सत्संग के प्रताप से वह लुटेरा बहुत बड़ा साधू हो गया। हुजूर राय सालग्राम साहिब की पवित्र वाणी है:—

जो मालिक का चहे दीदार।
जा तू बैठ गुरू दरबार॥
मालिक का बालक गुरु पूर।
मालिक का हरदम मंजूर॥
बन्दगि भजन करे सौ बरसा।
गुरु का संग दो घड़िया बढ़ का॥
जब वह घट का भेद सुनावें।
मन और सुरत गगन को धावें॥
गुरु बिन घट में राह न चलना।
डर और विघ्न अनेकन मिलना॥
गुरु रक्षा जाके सँग नाहीं।
इनको काल कर्म्म भरमाहीं॥
गुरु पूरे को समरथ जान।
कर्म्म बान उलटावें आन॥
भान रूप मालिक सुन भाई।
नर देही में रहा छिपाई॥
गुरु की गत परखो अन्तर में।
बिन परखे मत मानो मन में॥
परम पुरुष सम गुर को जान।
बिन जिह्वा कहें बचन सुजान॥

साध का निरख आँख और माथा।
सत का नूर रहे जिस साथा॥
अस चिन्ह देख करें पहिचान।
गुरुपद का जिन हृदय ज्ञान॥

गुरु बिन गति नहीं, सत्संग बिन सुमति नहीं।

गुरुमत बनो, मनमत न बनो। तुम्हारे बोझ उतर जायेंगे। वशिष्ठ गुरुमत थे, सुगमता से परम पद को पा लिया था। विश्वामित्र मनमत थे। ऊँचे बढ़कर नीचे गिरे। शकुन्तला उत्पन्न हुई। रामचन्द्र जी गुरुमत थे। लङ्का पर विजय पाई। रावण मनमत था। उसने सोने की लङ्का मिट्टी में मिलवा दी। आपा छोड़ो। गुरु की खोज करो। गुरु का सत्सङ्ग ही काम बनायेगा। उसी से बोझ उतरेंगे और किसी प्रकार यह मन न मानेगा। हज़ारों युक्तियाँ करो सब निष्फल जायेंगी। हुजूर राय सालग्राम साहिब बहादुर का पवित्र वचन है:—

"किस तरह यह मन नहीं हाथ आयगा।
साँचे गुरु की छाँह में मर जायगा॥
सुरत मन में प्रेम गुरु जिसके बसा।
फूल से भी है अधिक हरदम खिला॥
प्रीत सत्गुरु की तू हरदम धार यार।
औलियाओं का बना इस ही से कार॥"

(२३) ईश्वर की उपासना

ईश्वर का ध्यान करना, भजन सुमिरन करना और पूजा पाठ करना सब कुछ अच्छा है परन्तु ईश्वर की उपासना के और भी ढङ्ग हैं। जो सच बोलता है वह ईश्वर का सत्कार करता है। जो झूठ बोलता है वह ईश्वर का अनादर और अपमान करता है।

प्रेम के साथ व्यवहार करने वाला ईश्वर भक्त है परन्तु जो अन्याय करता है और दूसरों को हानि पहुंचाता है वह ईश्वर का नाम व्यर्थ ही लेता है। जो मनुष्य बुद्धि से, विवेक से, हाथ पाँव और अपने शरीर से उचित काम ले रहा है वह ईश्वर का सेवक है क्योंकि वह ईश्वर के दिये हुये पदार्थों का आदर करता है और उनसे उचित लाभ उठाता है परन्तु जो बुद्धि बिचार से काम लिये बिना अपने को भ्रम और भ्रान्ति में डालते हैं, जो हाथ को ऊँचा करके सुखा लेते हैं, जो पाँवों से स्वयं लूले लँगड़े बन जाते हैं उन्हें साधु या ईश्वर भक्त कैसे कहा जा सकता है ? मालिक के प्रदान किये हुये पदार्थों का अनादर करना महा पाप है। जो मनुष्य अपराध करता है पुलिस उसे दण्ड दिलाती है। आत्म हत्या करने वाला कारागार की हवा खाता है परन्तु क़ानून इन हाथ सुखाने वालों की ख़बर नहीं लेता। क्या यह आत्मघात के दङ्ग का अपराध नहीं है ? जैसे झूठ बोलने वाले सचाई के शत्रु हैं वैसे ही यह भी सचाई के शत्रु हैं क्योंकि जिसने हाथ पाँव नाक कान दिये वह सचाई है। जो उन्हें नष्ट करते हैं वे सचाई के साथ विरोध करते हैं। क्या तुम समझते हो कि सचाई का क़ानून उन्हें दण्ड नहीं देगा ? देगा और अवश्य देगा। सचाई सर्व व्यापक है। जो लोग ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते नास्तिक कहलाते हैं परन्तु जो झूठ बोलते हैं हम नहीं जानते इनको क्या कहें ? जो सच बोलता है, सच्चा व्यवहार करता है वह सच्चा भक्त है, और लोग जिनके मुख में राम और बग़ल में छुरी रहती है उन्हें कोई अनाड़ी ही भक्त कहेगा।

कुण्डलियाँ

परमारथ धन क्यों मिले ? लिया टके का मन्त्र।
लिया टके का मन्त्र, गुरु किया भिक्षु भिखारी।

माँगे सबसे भीख, भीख का बन व्यवहारी ॥
और की रोटी खाय, खोय पुरुषारथ अपना ।
जागृत में भी देखे तत्व का, वह नहिं सपना ॥
झूठा पाखण्ड यन्त्र है, झूटा ही है तन्त्र ।
परमारथ धन क्यों मिले ? लिया टके का मन्त्र ॥

——❀)⌒(❀——

(२४) सोचने समझने की बातें

(१) दिन भर यदि तुम ने कोई काम नहीं किया, केवल इतनी समझ आई कि आत्मा सब कुछ है और आत्मा में सब कुछ है तो समझ लो कि वह दिन नष्ट नहीं गया ।

(२) संसार में चाल चलन से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है । जिसका चाल चलन अच्छा है वह सब कुछ कर सकता है और उसको सब कुछ प्राप्त है परन्तु जिसका चाल चलन अच्छा नहीं है वह धनवान होते हुये भी निर्धन है । श्री रामचन्द्र जी से राज छीन लिया गया । वह साधु के भेष में घर से बाहर निकले । सारी सामग्री आप ही आप एकत्रित हो गई, यहाँ तक कि उन्होंने विभीषण को लङ्का का और सुग्रीव को किष्किन्धा का राज दिया और फिर अयोध्या में आकर राज सिंहासन को सुशोभित किया । चाल चलन की अच्छाई के अतिरिक्त इस का और कोई भी कारण नहीं । नियम बद्ध जीवन ही सब कुछ है ।

(३) अपने विचारों को पवित्र करो । तुम्हारे काम आप ही आप शुद्ध और पवित्र होते जायेंगे । रैदास जी कहा करते थे–"मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा," और यह वास्तव में सच भी है ।

(४) रोने झींकने से तुम्हारे दुःख दूर न होंगे किन्तु काम और प्रयत्न करने ही से दूर होंगे ।

(५) सफलता की जड़ में दृढ़ आशा बीज रूप में छुपी रहती है । इसे समझ लो और तुम्हारा कल्याण होगा ।

(६) दूसरों के वश करने का ध्यान छोड़ो। केवल अपने आप को वश में करो फिर सारा संसार मुट्ठी में आ जायेगा। लोग औरों को चेला मूँड़ते रहते हैं परन्तु अपने आप आपको शिष्य नहीं बनाते। यदि अपना मन वश में आ जाये तो सारा जगत् अपना हो जावे।

मन ही को परबोधिये, मन ही को उपदेश।
जो यह मन वश आवई, तो शिष्य होय सब देश॥

(७) अपने आदर्श के अनुसार अपने जीवन और स्वभाव को बनाओ। तुम आप आदर्श बन जाओगे।

(८) तुम केवल औरों ही के विचार को अपना अङ्ग सङ्ग न बनाओ किन्तु अपने आप भी नये नये विचार सोचा करो क्योंकि जो लोग औरों के जूठे विचारों ही को अपना आधार बनाते हैं वह अशुद्ध और अपवित्र हैं। तुम भी तो कुछ हो! फिर औरों की जूठी पत्तल क्यों चाटते हो? पुस्तकों का पढ़ना छोड़ो। अपने मन के ग्रन्थ को पढ़ा करो नहीं तो तुम कभी संतुष्ट न होगे।

(९) यदि तुम अपने आप को बदलना नहीं चाहते तो शीघ्र ही मर जाओगे। याद रक्खो परिवर्त्तन संसार का अटल नियम है। जो आज है कल नहीं रहेगा। फिर तुम अपने में परिवर्त्तन क्यों नहीं करते? तुमको नित्य ही उन्नति की ओर बढ़ना चाहिये। यत्न करो, प्रयत्न करो और अन्त में तुम को वह जीवन प्राप्त होगा जो नाशवान नहीं है और जो परिवर्त्तन के स्थल से बहुत ही ऊँचा है परन्तु जब तक तुम इस स्थल से सम्बन्ध रखते हो तुम को नित्य ही अपनी दशा की निरख परख करते हुये आगे की ओर बढ़ना चाहिये। इसको समझो और तुम्हारा कल्याण होगा।

कुण्डलिया

ब्रह्म बढ़ै चिन्तन करै, यही ब्रह्म का अर्थ
यही ब्रह्म का अर्थ, और कोइ अर्थ न दूजा।
सोचै बढ़ै सो ब्रह्म, वही करै ब्रह्म की पूजा॥
बढ़ो बढ़ा बढ़ चलो, सोच कर नित ही बढ़ना।
जीवन का रस मिले, वृद्धि में जीवन गढ़ना॥
वृद्धि भाव चिन्तन नहीं, उसका जीना व्यर्थ।
ब्रह्म बढ़ै चिन्तन करै, यही ब्रह्म का अर्थ॥

(२५) सुमति की महिमा

एक लोहार हाथ में लोहे का बसूला लिये हुये जंगल में किसी वृक्ष के काटने के लिये आया। इस पर पक्षी गण बैठे कुलेल कर रहे थे। लोहार को देखकर घबराये। वृक्ष ने उन्हें चिन्ता में देखकर कहा, "तुम कुछ भी सोच मत करो। जब तक मेरी टहनियाँ, शाखायें और तने एक साथ गुथे हुए हैं तब तक कोई मुझको काट नहीं सकता और न किसी को ऐसा साहस हो सकता है। तुम अचिन्त रहो।" लोहार भी बड़ा चतुर था। उसने वृक्ष की बात सुनकर मन में सोचा और बसूले के दस्ते के लिये उसी समय एक डाली काट ली। तब वृक्ष ने कहा, "पक्षियो! अब तुम उड़ जाओ। अब कुशल नहीं है क्योंकि हमारा अपना अङ्ग हमारा शत्रु बन गया। हमारे घर में फूट पड़ गई! अब हमारी जड़ अवश्य कट जायेगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।" ऐसा ही हुआ। दम के दम में विशाल वृक्ष बसूले की चोट से घायल होकर पृथ्वी पर आ रहा।

इसी प्रकार जब किसी जाति की जनता जातीय सङ्गठन में एक दूसरे से मिली जुली रहती है तब तक उसे किसी शत्रु

का भय नहीं रहता परन्तु जहाँ इनमें से एक के भी हृदय में लालच, ईर्षा और द्वेष ने घर कर लिया और फूट पड़ गई फिर इसको अपने जीवन के लाले पड़ जाते हैं।

यदि विभीषण के हृदय में रावण को नीचा दिखाने का विचार न उत्पन्न हुआ होता तो राम को लङ्का पर विजय प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। वह शत्रु दल से जाकर मिल रहा और सोने की लंका मिट्टी में मिल गई। उस समय से हिन्दुओं में यह कहावत चली आ रही है—

"घर का भेदी लंका ढावे।" कबीर साहब का वचन है:—

"यक लख पूत सवा लख नाती।
ता रावण घर दिया न बाती॥
लंका सा महल समुद्र सी खाई।
ता रावण की सुध नहिं पाई॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी है:—

"जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहाँ विपति निदाना॥"

(२६) चाल चलन

यदि धन द्रव्य गया तो कुछ भी चिन्ता न करो, यदि स्वास्थ बिगड़ गई तब भी सोच मत करो परन्तु यदि चाल चलन बिगड़ गया तो समझो कि तुमने सब कुछ खो दिया। धन द्रव्य फिर हाथ न आ सकता है। स्वास्थ भी औषधि के सेवन से ठीक हो सकता है परन्तु चाल चलन का गिरा हुआ मनुष्य सँभल नहीं सकता क्योंकि वह न केवल औरों की दृष्टि से गिरा रहता है किन्तु वह स्वयं अपने आप को तुच्छ और हेटा समझने लगता है।

हमारे शास्त्रों ने लिखा है कि जिसका अपमान लोग किया करते हैं सम्भव है वह सँभल जाये परन्तु जो अपनी दृष्टि में आप गिरा हुआ है उसको बहुत दिनों तक आवागमन के अथाह सागर में गोता खाना पड़ेगा तब जाकर वह शुद्ध होगा।

इसलिये ध्यान रक्खो—यदि सांसारिक धन द्रव्य जाता है तो चिन्ता मत करो। अपने चाल चलन को ठीक रक्खो फिर तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे। यदि यह बिगड़ गया तो समझ लो कि सब कुछ हाथ से जाता रहा।

(२७) उदाहरण

किसी अँग्रेजी कारखाने में एक क्लर्क नौकर था। मालिक ने उस से कहा, "रविवार के दिन आकर काम करो क्योंकि परमावश्यक काम आन पड़ा है।" उसने उत्तर दिया, "यह दिन मैंने ईश्वर की पूजा सेवा के लिये निर्दिष्ट कर रक्खा है। आप इस विषय में कृपया मुझे क्षमा कीजिये।" मालिक को बहुत ही बुरा लगा परन्तु चुपचाप रह गया। एक दूसरे अवसर पर कचहरी में गवाही देने का काम आ पड़ा। क्लर्क सच्ची बातें जानता था। उसने झूठ बोलने से इन्कार कर दिया। अब तो उसका मालिक बहुत ही घबराया और उसने क्रोध में आकर इसे अलग कर दिया।

क्लर्क बहुत ही निर्धन था। उसने नौकरी की चिन्ता नहीं की परन्तु झूठ बोलने से वह कतराता रहा। वह कुछ दिनों तक बेकार घर बैठा रहा। ईश्वर दयालु और कृपालु हैं। एक बड़े कारखाने के मालिक ने इस पुराने मालिक से एक सच्चा और ईमानदार क्लर्क माँगा। यह अपने मन में अप्रसन्न तो अवश्य था परन्तु हार मान कर इसने लिखा कि इसके जीवन में केवल एक ही मनुष्य सच्चा और धार्मिक मिला जो केवल अपनी

सच्चाई और ईमानदारी के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया था।

इस पत्र व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि नौकरी इस को मिल गई और थोड़े ही दिनों में अपने नये मालिक का विश्वासपात्र बन गया और अपने कार बार में सच्ची और पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली।

संसार में परीक्षा का समय बराबर आता रहता है। तुम इन परीक्षाओं में पूरे और सच्चे उतरने का यत्न करो। दुःख और आपत्ति की कुछ भी चिन्ता न करो। यदि तुम शुद्धात्मा और सच्चे हो तो संसार अवश्य तुम्हारा सन्मान और सत्कार करेगा। अच्छे चाल चलन का मनुष्य सामग्री न रखते हुये भी अपनी सफलता का यत्न कर लेता है। तुम भली भांति देख लो कि जब तक मनुष्य अपने सद्विचार पर आरूढ़ रहने का साधन नहीं कर लेता तब तक वह सच्चा शूरवीर और अभय नहीं हो सकता। भीष्मपितामह का जीवन प्रशंसनीय है। इनका असली नाम कुछ और था। भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण उनका ही भीष्म हो गया और जीवन पर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहे। यही कारण है कि उनका नाम आज तक आदर और सन्मान के साथ लिया जाता है।

(२८) गुरु के लक्षण

हिन्दी में एक प्रसिद्ध कहावत है, "पानी पीजिये छान कर, गुरू कीजिये जान कर।" यह उपदेश वास्तव में बर्तने योग्य ही है।

संसार में जिस प्रकार हर बातों की दुकानदारी है वैसे ही धर्म भी उससे बचा नहीं रहा। बहुत से लोगों ने सन्तों के

मार्ग को पेट पालने का आधार बना लिया है और भोले भाले मनुष्य जहाँ एक बार इनके जाल में फँसे तो उन्हें इस प्रकार पट्टी पढ़ा दी जाती है और बुद्धि चक्षु पर ऐसी पट्टी बाँध दी जाती है कि कुछ काल के लिये ही नहीं किन्तु जीवन पर्यन्त के लिये वह अपने सोच विचार और बुद्धि विवेक को परित्याग करके गुरु ही को अपने गले की ज़ंजीर बना लेते हैं, कट्टर, हटधर्मी और पक्षपाती बनकर संत मत के मुख्य उद्देश्य और सिद्धान्त से कोसों दूर जा पड़ते हैं। पन्थ और गुरू, सभ्यास और साधन मुक्ति के हेतु हैं और जब यह आप ही बन्धन बन जायें तो फिर और किसी से मुक्ति की आशा कैसे की जाये! कबीर साहब ने ऐसे मनुष्यों को गुरु पशु और मत पशु कहा है। इसलिये पग पग पर सोचने विचारने की आवश्यकता है।

परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि झूठी गुरुवाई करने वाले ही हर जगह रहते हैं। सृष्टि कर्म का आधार सचाई ही है। यहाँ सच्चे भी हुआ करते हैं और यह झूठे भी उन्हीं सच्चों का अनुकरण करके अपना व्यवहार चलाते हैं। जिज्ञासु को बुद्धि विवेक से काम लेना चाहिये। यदि वह विवेक से काम न लेगा तो सम्भव है कि भ्रम और भ्रान्ति में फँस जाये।

गुरु की पहिंचान भी सुगम नहीं है। यदि बाहिरी बर्ताव और रूप रङ्ग भी अच्छा हुआ और कुछ सिद्धि शक्ति भी प्रतीत हुई तो क्या हुआ? इसमें भी धोका होता है।

सार बचन राधास्वामी (गद्य) में वाणी आती है और वह सोचने समझने के योग्य है। कहा गया है:—

"सत् गुरु की पहचान कठिन है। जिसने सतगुरु को पहिचाना वह निर्भय हो गया क्योंकि जिस किसी की दुनियां के हाकिम से पहचान होती है वह किसी को ख़याल में नहीं लाता

और सतगुरु जो कुल के मालिक हैं उनकी पहिचान जिसको आ गई उसको फिर किसी का डर न रहा। यह बात किसी बिर्ले जीव को हासिल होगी। और जीवों का तो यह हाल है कि दुनियां के डर से सतगुरु को छोड़ देते हैं। तो फिर सतगुरु की पहचान कैसे हो? असल में जीव की ताक़त नहीं है कि सतगुरु को पहिचान सके। दुनियां के हाकिम हुकूमत से सबको डराते हैं और सतगुरु अपने को प्रकट नहीं करते बल्कि संसार में जीवों की तरह से वर्ताव करते हैं। इस वजह से जिस पर उनकी दया है वही पहचान सकता है। दूसरे की ताक़त नहीं है।"

इस बचन में कई बातें विचारने योग्य हैं। पहिली बात यह है कि सच्चे संतों का जीवन साधारण मनुष्यों के समान सरल और सीधा होता है। दूसरी बात यह है कि वह अपने सतगुरु होने का विज्ञापन नहीं देते। तीसरी बात है कि वह किसी को डराते धमकाते नहीं और न सिद्धि शक्ति का भय दिखलाते हैं। जहां देखो कि यह दशा है वहां से सच्चाई कोसों दूर चल देती है।

बड़ी ही कठिनाई है। साधारण मनुष्यों ने इसी को गुरु का पूरा पूरा लक्षण समझ रक्खा है। जिसको ठाट बाट के साथ रहते हुये देखते हैं, जो अपनी गुरुवाई का विज्ञापन देता रहता है और जो लोगों को चेला बन जाने के लिये उत्तेजक करता हुआ कहता रहता है कि यदि तुम मेरे पास न आओगे तो मैं तुम्हें हानि पहुँचा दूँगा उसी की ओर सर्व साधारण झुक पड़ते हैं। फिर क्या कीया जाये! इसके विषय में हुजूर महाराज राय सालग्राम साहिब बहादुर की पवित्र वाणी है:—

"रूप रङ्ग उसका मत देख। श्रद्धा भाव निशाना पेख"

अर्थात् उसके बाहरी रूप रंग पर मत जाओ। केवल उसकी श्रद्धा को देख कर श्रद्धालु बनो। क्या यह सहज है?

बाहिर मुखी मनुष्यों को तो केवल दिखावे की बात ही से काम रहता है। वह तो इन्हीं पर मरते हैं। जिनके पास बड़ी भीड़ भाड़ है, जिनकी दूकान भली भाँति चली हुई है वह उन्हीं की ओर खिंचते हैं। यह तो दिखावे का समय है। यही इस समय की मुख्यता है। जो विज्ञापन देना जानता है वही सफलता प्राप्त करता है परन्तु जिसमें यह गुण नहीं है वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है। विज्ञापन का देना ही उसे झूटा सिद्ध करता है परन्तु इस पर सोचता कौन है? संसार की चाल भेड़ धसान है। जिधर एक भेड़ गई उधर दूसरी भी चल खड़ी हुई। इसका किसी को ध्यान नहीं रहता कि वह पहिली भेड़ कुयें में गिर रही है या अपने उचित स्थान की ओर जा रही है। कबीर साहिब की वाणी है—

"लालों की नहिं बोरियाँ, हंसों की नहिं पांत।
सिंहों के लहड़े नहीं, साध न चलें जमात॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नांह।
दम्भ चाल करनी करे, साध कहो मत ताह॥"

संसार में सामाजिक धर्म का प्रवाह है। जमाअत की करामात प्रसिद्ध है। झूटे गुरु जो दुकानदार हैं सामाजिक बातों की ओर विशेष ध्यान केवल इस लिये देते हैं कि लोग उनकी ओर आकर्षित हों। वे ऐसे ही काम करते कराते हैं जो संसारियों को प्रिय लगते हैं। किसी ने धर्मशाला बनाया, किसी ने कुंआं खुदवाया, किसी ने सदाव्रत चलाया, किसी ने पाठशाला की नीव डाली, किसी ने अनाथालय बनवाया। यह सब सामाजिक बातें हैं जिनका सम्बन्ध सामाजिक जनता से है। इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि यह परोपकार के लिये हैं और परोपकार बहुत ही अच्छी बात है परन्तु इन से आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता। वह कोई और ही वस्तु है।

ऐसी दशा में फिर क्या करना चाहिये? यदि बाहिर

मुखता ही को कोई मनुष्य आदर्श समझता है तो उसके विषय में भी संतों और महात्माओं के बचन हैं यदि उन्हीं से काम लिया जाये तब भी कुछ न कुछ संतों की पहिंचान होती है परन्तु वह पहिंचान भी किसी ही हद तक है। उसे भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता। हुजूर साहिब का पवित्र बचन है:—

"गुरु का निरख आंख और माथा।
सत् का नूर रहे, जिस साथा॥
जब वे घट का हाल सुनावें।
नभ की ओर सुरत मन धावें॥"

अर्थात् संत का चौड़ा ललाट और दोष रहित आंख उस के पूर्ण होने के लक्षण हैं। जिसका ललाट चौड़ा होगा वह मन का, हृदय का और साहस का ऊँचा होगा जिसका ललाट कम चौड़ा होगा वह मन का, हृदय का, बुद्धि का और साहस का छोटा और नीचा होगा। यह सामुद्रिक शास्त्र की बातें हैं। इसी प्रकार आंखों के विषय में भी समझना चाहिये। चमकीली और प्रकाशवान आंखें उसके उदार चित और विशाल हृदय होने के प्रमाण हैं। यदि आंखों में किसी प्रकार का आजन्म दोष है तो ऐसे मनुष्य से लाभ की आशा रखना भूल और भ्रम है। दूषित आंख वालों में दया क्षमा और शील का अभाव होता है। ऐसा मनुष्य छेड़ छाड़ और लड़ाई झगड़े किया करता है। उसमें शान्ति नाम मात्र भी नहीं रहती। वह नित्य ही चंचल और अशान्त रहता है। यह बातें मानुषी अनुभव की हैं जो शताब्दियों से सच्ची पाई जाती हैं इसी प्रकार और दोषों के विषय में भी समझो। इसकी विशेष व्याख्या करना व्यर्थ है। समझने वाले के लिये इतना ही बहुत है।

दूसरी चौपाई का अर्थ यह है कि जब वह ऊँचे स्थान की बातें सुनायेंगे तो मन और सुरत की चढ़ाई आप ही आप ऊपर

मस्तिष्क की ओर होती जायेगी । प्रभावशाली मनुष्य की बात प्रभाव रहित नहीं होती क्योंकि वह कमाई की हुई होती है और सुरत के जिस स्थान पर उस के मन की बैठक होती है उस स्थान की बिजली के आनन्द दायक प्रभाव सुनने वाले पर भी पड़ते हैं। यह दूसरी साक्षात् पहिचान है।

तीसरी पहिचान उसका निष्काम जीवन है। इस से कहीं अधिक बातें राधास्वामी मत में गुरु के पहिचान के लिये बताई गई हैं परन्तु उन की व्याख्या में कोई क्यों पड़े! सार बचन राधास्वामी (छन्द बद्ध) की वाणी है:—

"गुरु सोई जो शब्द सनेही, शब्द बिना दूसर नहिं सेई।
शब्द बतावे सो गुरु पूरा, उन चरनन की हो जा धूरा॥
और पिछान करो मत कोई, लच्छ अलच्छ न देखो सोई।
शब्द भेद लेकर तुम उन से, करो कमाई तुम तन मन से॥"

(२६) आत्मिक जीवन

[१] प्रत्येक मनुष्य को आत्मिक जीवन का अधिकार है। एक में भी इसका अभाव नहीं है और न यह होसकता है, हाँ इसकी समझ बूझ थोड़े मनुष्यों को है। प्राकृतिक समझ से तो कोई भी विहीन नहीं है। यहां हमारा मन्तव्य जो समझ बूझ से है वह आत्मिक दृश्य की ओर अप्राकृतिक दृष्टि से ध्यान न देने से है। इन्हें बहुत कम लोग समझते हैं और इन्हीं के समझाने बुझाने, आत्मिक अधिकारी बनाने और आत्मिक जीवन व्यतीत करने कराने का मुख्य यत्न केवल ध्यान भक्ति, सेवा साधन अभ्यास, और वैराग की सम्मिलित अवस्था है।

(२) आत्म सत्ता क्या है? यह और कोई वस्तु नहीं है किन्तु शरीर, मन और सुरत में सदृश्यता, एकता और उनकी सङ्गठित अवस्था का नाम है। जिसने इसे समझ लिया वह

आत्मिक हो गया, जिसने नहीं समझा उसे संसार में पग पग पर ठोकर खाना होता है। प्रकृति के इस ठोकर देने का मन्तव्य और कुछ नहीं है किन्तु केवल यह है कि अनुभव बढ़ने के साथ साथ शरीर मन और सुरत की त्रिपुटी में सदृशता, समता और एकता आ जाये। यही दशा अति उत्तम है। भ्रम में पड़ा हुआ मनुष्य राह से बेराह होकर भटक जाता है और उसको ऐसा होना ही चाहिये। इससे बचाव कब है ? जो शक्ति उसे घुमा फिरा कर राह पर लाती है उस के दयालु होने में क्या सन्देह हो सकता है ! वह निर्दयी या अन्यायी नहीं है। इसका काम सोच समझ के साथ है। जीव भ्रम में पड़कर इस एकता के नियम को उलङ्घन करके धोका खाते हैं और प्रकृति उन्हें दुख और आपत्तियों की ठोकरें दे देकर ठीक राह पर लाती रहती है।

(३) जो लोग आत्म सत्ता के इस नियम को समझ लेते हैं उनका जीवन हर जगह, हर स्थल और हर अवस्था में आनन्द दायक और सुख दायक होता है। जो नहीं समझते वह डाँवा डोल फिरते और व्यर्थ ही आपत्तियां मोल लेते रहते हैं इसका केवल एक बार समझ लेना बहुत है। दो चार दस बार समझने की आवश्यकता नहीं है परन्तु समझ का अर्थ यह है कि यह बात चित्त में भली भाँति बैठ जाये कि जीवन साधन सम्पन्न होकर अभ्यास बुद्धि और आनन्द की सच्ची राह (सुषमन मार्ग) पर आ जाये पढ़ लिख कर विद्या द्वारा उसे समझ लेना और उस पर आरूढ़ न होना और उलझन में फँस जाना है। राह पर तो कभी न कभी हर एक को आना ही पड़ेगा चाहे वह आज आये या दो चार सौ वर्ष के पीछे। प्रकृति देर या सवेर में उसे पहुँचाये हुये बिना चैन न लेगी। बात साधारण सहज और साधन योग्य है।

तुम शरीर रखते हो, शरीर से काम करो। मन रखते हो, मन से सोचो समझो। सुरत रखते हो, सुरत के आनन्द को भोगो।

शरीर का सम्बन्ध कर्म्म से है। मन का सम्बन्ध सोच विचार और ज्ञान से है और सुरत का सम्बन्ध सुख और आनन्द से है। शरीर कर्म्म काण्डी, मन ज्ञान काण्डी और सुरत उपासना काण्डी है। शरीर से काम करना जीवन के विकास का चिन्ह है। मन से सोचना सार वस्तु की निरख परख करना है और सुरत से मिलना आनन्द और सुख का हेतु है।

पहिले पहिल भ्रम में पड़ जाने के कारण यह तीनों भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु जहाँ इनका सिलसिला स्वाभाविक रीति से चल निकला फिर इस प्रकार गुथे हुये और एक दूसरे के साथ पुरोये हुये प्रतीत होने लगते हैं कि इनमें नाम मात्र भी भेद नहीं जान पड़ता।

स्वास्थ ठीक रहने की अवस्था में किसी को भी शरीर की ओर ध्यान नहीं रहता, रोग ग्रसित होने पर ही यह शरीर बोझ प्रतीत होने लगता है। मन की शान्ति के समय किसी को ज्ञान तक नहीं रहता कि मन भी कोई वस्तु है परन्तु जहाँ सोच विचार ने घेरा फिर यही मन दुखदायी जान पड़ता है। सुरत की चैतन्य अवस्था के समय कौन ध्यान देता है कि उसमें सुरत है या नहीं परन्तु सर पर आपत्ति आने दो, किसी वस्तु से वियोग होने दो फिर लोगों को जान देने और जान खोने की सूझती है। परन्तु होता क्या है ? न तो कोई बिना शरीर के होता है न बिना मन के और न किसी से बे जान हुआ जाता है। यह भी वैसे ही भ्रम हैं जैसे इनके परित्याग का विचार भ्रम है।

(४) आत्म ज्ञान की फुरना पशुओं और वनस्पतियों में भी है परन्तु मन बुद्धि के न बढ़ने के कारण मनुष्य के समान उनमें पूर्ण विकाश नहीं है। होने को तो यह कंकड़ पत्थर तक में है परन्तु इन सब में वह मूढ़ अवस्था में पड़ी रहती है। आत्म ज्ञान की फुरना का मुख्य प्राकृतिक उद्देश महात्मा बनाना है। जिनको

दीक्षा नहीं मिली वह इसे नहीं समझ सकते। दीक्षित और अनुभवी अभ्यासी को इसकी समझ आती है।

(५) आत्म ज्ञान की फुरना के लिये विशेष शारीरिक बल की भी आवश्यकता नहीं है। स्वास्थ और साधारण बल का होना आवश्यक है जिसमें रोग ग्रसित होने का भय बहुत ही कम रहे।

(६) आत्म ज्ञान के विषय में साधन और अभ्यास के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार से बचकर रहने की बड़ी आवश्यकता है। ईर्षा और द्वेष उसके बहुत बड़े शत्रु हैं। हिंसक या निर्दयी मनुष्य इस अमूल्य धन को प्राप्त नहीं कर सकता। जो स्वभाव का चिड़चिड़ा, हटीला और हवा के झोंकों से लड़ने वाला हो वह भूल कर भी इसका नाम न ले। आत्मिक अवस्था तत्त्व की समता, सार की एकता और जो कुछ है अनेकता या एकता सबकी मिली जुली दशा है। यह बात समझ में आ जाये तो फिर लोक परलोक की सम्पत्ति इसके सामने तुच्छ है।

(७) साधन और अभ्यास की बहुत सी विधियाँ हैं। इन सब में से शब्द योग बहुत ही सुगम, सहज और तत्काल फल देने वाला है। मन में आये कर देखो, न मन चाहे न करो। कम से कम इतना तो करो कि एक बार साधारण रीति से राधास्वामी योग को पढ़ डालो जिसमें यह सारी बातें उत्तम रीति से तुम्हारी समझ में आ जायें फिर यदि आत्मिक फुरना का उभार होने पर आया है तो आप अपनी राह निकाल लेगा।

(३०) अपना अपना पक्ष

किसी मनुष्य ने कुत्ता पाला था। एक दिन उसे लिये हुये बाजार में मछली मोल लेने गया। मछली वाले की दुकान पर कई जीते हुये केकड़े भी रेंग रहे थे क्योंकि बहुधा लोग केकड़े का

मांस भी बड़े चाव से खाते हैं। यह मिलते भी कम हैं। कुत्ता दुर्भाग्य वश वहाँ पृथ्वी पर बैठ गया। दो चार केकड़े उसकी पूंछ से चिमट गये। इनकी पकड़ बुरी होती है। जब वह कुछ पकड़ लेते हैं। तो फिर बड़ी ही कठिनाई से छोड़ते हैं। कुत्ता चिल्लाता हुआ भाग निकला। मछली वाले ने कुत्ते वाले को डाँट बताई, 'कुत्ते वाले ने कहा, तू अपने केकड़ों को पुकार जो मेरे कुत्ते की पूंछ छोड़ दें। वह बेचारा दुखी है।" इन बातों को सुन कर लोग हँस पड़े। कुत्ते का पता नहीं। वह ऐसा भागा कि फिर बाजार की ओर मुँह नहीं किया।

धार्मिक पक्षपात की भी यही दशा होती है। उसकी बला इसको और उसकी बला उसको चिमट जाती है। आन्दोलन मच जाता है और पक्ष छुड़ाये भी नहीं छूटता। धार्म्मिक शास्त्रार्थ का यही परिणाम होता है। निर्णय तो होता ही नहीं, दोनों ही लड़ाकों के मन में मैल आ जाता है। पक्षपात आत्मिक रोग है। इसके रोगी को आज तक अच्छा होते हुये नहीं देखा गया। दोनों पक्षपाती सार हीन, विवेक हीन और विचार हीन हो जाते हैं।

दोहा

पक्षा पक्षि के भेद में, सूझे नाहिं अभेद।
मुल्ला पंडित लड़ मुये, पढ़ कुरान और वेद॥
पक्ष छोड़ कर सार ले, सार तत्व पहिचान।
मुल्ला पंडित हों दोऊ, पल में एक समान॥
हिल मिल खेलूँ शब्द में, मन का पक्ष हटाय।
समझे का मत एक है, नन्दू कहे बताय॥

(३१) दुब्धा का जाल

एक तिरिया पशु तालाब में नहाने गया। पानी गहरा और घाट चिकना था। सँभल न सका, गिर पड़ा। कुशल यह हुआ कि

तालाब में पानी के भीतर एक लकड़ी का खम्भ गड़ा हुआ था। उसी से चिमट रहा और रोने चिल्लाने लगा। किसी स्त्री ने कहा, "ठहरो, अभी मर्द आते हैं। तुम को बाहिर निकाल लायेंगे। स्त्रियों के समान रोते क्यों हो?" उसने उत्तर दिया, "प्राण संकट में है। यदि इस खम्भे को छोड़ता हूँ तो डूब जाने का भय है। यदि कोई शीघ्र ही आकर नहीं निकाल लेता तो देर होने पर स्त्री कान पकड़ेगी मैं उस से बहुत ही डरता हूँ। यह मेरा रोना भी विशेषकर स्त्री ही के लिये है।" वह हँसी। संयोग वश बहुत देर पीछे कुछ लोग आये और उसे निकाल कर बाहिर किया। फिर भी उसका रोना कम नहीं हुआ। यही दशा संसारियों की भी है। माया न हो तो दुखी और यदि हो तो महा दुखी।

माया नहीं तो दुख महा, माया मिली तो कष्ट।
दुब्धा में पड़ कर मरे, जो संसारी भ्रष्ट॥

(३२) सच्ची बात

जो त्यागी बिना आवश्यकता के किसी ग्रहस्थी के घर रोटी खाता है वह अपने धर्म से पतित है और जो ग्रहस्थी किसी साधु की वस्तुओं को बुरी और स्वार्थ साधन की दृष्टि से देखता है वह भी नीच और कुटिल है। परम संत कबीर साहिब की वाणी है:-

"गिरही का टुकड़ा बड़ा, नव नव अंगुल दाँत।
भजन करे तो ऊबरे, नहिं तो काढ़े आँत॥
कबीर धान अतीथ का, करे अधिक अपकार।
गिरही गहे न भूल कर, नास होय घर बार॥
माल जो छीने साध का, घर में लागे आग।
साधू हो संग्रह करे, या का बड़ा अभाग॥"

(३३) शैतान की सन्तान

किसी ने देखा कि एक बाग़ में एक घने वृक्ष की छाँह

में शैतान खाट बिछाकर सो रहा है और उसे यह पता नहीं है कि आगे क्या हो रहा है। उसने उसे जगाया। "तेरा काम तो लोगों के बहकाने और भटकाने का है। तू यहाँ सोया हुआ क्या कर रहा है ? जा, अपना काम कर।" शैतान हँसा, जीवन पर्यन्त तो लोगों को भुलाता और भटकाता रहा। अब लड़के वाले हो गये और वह सबके सब बड़े ही योग्य हैं। क्या अब भी बुढ़ापे में न सोऊँ ? तू जा अपना काम देख। मुझे न छेड़। मेरे सोने में बाधक न हो। मुझे आराम करने दे।" वह शैतान का उत्तर सुनकर चकित होगया, "पूछा तेरी सन्तान कौन है ?" शैतान हँसा, "बड़े आश्चर्य की बात है ! तूने मेरी योग्य सन्तान को नहीं देखा ? सुन ! यों तो मेरा कुटुम्ब बड़ा है परन्तु मेरे दो लड़के बड़े सपूत हैं एक वकील और दूसरा पटवारी। यह दोनों रात दिन सब में खटपट कराया करते हैं और किसी को सीधी और सच्ची राह पर नहीं आने देते। इन दोनों के भी लड़के हैं जो मेरे पोते हैं। वह अरायज़नवीसी और दल्लाली करते फिरते हैं। अब मैं सुख चैन से पाँव फैलाकर सोता हूँ।"

(३४) पढ़ा जाट ईश्वर बराबर

एक जाट ने पढ़ने लिखने की शिक्षा पाई और पहिले से अधिक सयाना हो गया। संयोग वश उसके घर एक मोटी ताज़ी बहुत दूध देने वाली गाय थी। उसे देखकर पुरोहित के मुँह में पानी भर आया। वह दाँव घात में था। पढ़े लिखे जाट का बाप अस्वस्थ हुआ। ब्राह्मण पुरोहित ने बूढ़े जाट को पट्टी पढ़ाई, "मरते मराते एक गऊ दान कर दे जिसकी पूँछ पकड़कर वैतरणी पार हो जाये नहीं तो यम के दूत सतायेंगे।" बूढ़े के मन में बात बैठ गई। बेटे से कहा, "क्या हर्ज है ! इस गाय का दान

कर दे। मेरा परलोक बन जायेगा।" नवयुवक भाँप गया कि यह लालची ब्राह्मण की सिखाई हुई बात है। उसने प्रसन्नता के साथ वह गाय दान कर दी। इधर ब्राह्मण गाय ले गया उधर मृतक पिता को चिता पर जलाकर जाट घर आया। उस के मन में सबसे पहिले गाय के लौटाने की धुन समाई। रात के समय उसके साथी गये और चोरी से गाय को लौटा लाये। ब्राह्मण विस्मित हुआ। अन्त में उसने समझ लिया कि यह जाट का काम है। वह उसके घर पहुँचा और धिक्कारने लगा। जाट बोला, "सुन ब्राह्मण! तू पढ़ा लिखा है। पोथी पत्रा बाँचता है। मैं भी पढ़ लिख कर सयाना हो गया। तूने अपनी बुद्धि से उल्टी चाल चल कर गाय ली थी। मैंने छुपे चोरी गाय को लौटा लिया।" ब्राह्मण ने कहा, "दान दी हुई वस्तु को लौटा लेना पाप है।" जाट हँसा, "तुझ जैसे पढ़े लिखों के लिये पाप और पढ़े लिखे जाट के लिये पुण्य हैं।" "ब्राह्मण ने पूछा यह कैसे?" जाट बोला, "तू पढ़ा लिखा मूर्ख है जो इतना भी नहीं समझता।" सुन, अपढ़ जाट पढ़ा बराबर और पढ़ा जाट ईश्वर बराबर। अपढ़ जाट तो दान देकर नहीं लेता क्योंकि वह पढ़ा बराबर है परन्तु पढ़ा जाट दान देकर चुपके और चोरी से ले लेता है। वह ईश्वर बराबर है। क्या तू नहीं देखता ईश्वर लड़के लड़की सब दान देता है और फिर चुपके से लौटा लेता है। जब उसे पाप नहीं होता तो मुझे क्यों होने लगा! मैं तो अब पढ़ लिख कर उसके बराबर हो गया। क्यों! सच है या नहीं?" ब्राह्मण को मानना पड़ा, "सच है अच्छा, तू ईश्वर के बराबर होकर कुछ दिनों के लिये गाय दे दे।" जाट बोला, "जब ईश्वर अपनी दी हुई वस्तु लौटा लेता है तो फिर दूसरी बार नहीं देता। देख, उसने तुझे बेटा बेटी दिये थे। अब ले लिये (मर गये) क्या दूसरी बार फिर तुझे वही लड़का लड़की देता है? कभी नहीं!

फिर मैं फिरी हुई गाय कैसे दूँ ? यह कभी न होगा ।" पुरोहित ने कहा, परन्तु यदि ईश्वर वह नहीं तो दूसरा तो देता है । तू यदि वह गाय नहीं देता तो दूसरी दे दे ।" जाट हँसा, "यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। जो में आयेगा देगा, न जी में आयेगा न देगा। हां उसकी पूजा सेवा किया कर । यह तेरा धर्म्म है ।" पुरोहित थक थका कर अपना सा मुँह लेकर चला गया और जाट ने उसे गाय नहीं दी।

(३५) बैकुण्ठ जाने में रोक टोक

बैकुण्ठ का पट खुला । जो जो उसके अधिकारी थे प्रवेश कर गये। एक बनिया भी हाँपता काँपता हुआ वहाँ पहुँचा। यमराज के दूत ने रोक दिया, "तुम कौन हो जो बैकुण्ठ में जाना चाहते हो ?

बनिया—"मैं बनिया हूँ। दिल्ली में मेरा बड़ा नाम है। मेरे पास धन द्रव्य और मान प्रतिष्ठा बहुत थी।"

दूत—"तुम क्या चाहते हो ?"

बनिया—"मैं बैकुण्ठ जाना चाहता हूँ।"

दूत—"भला तुमने क्या काम किया है कि तुमको बैकुण्ठ में जगह दी जाय ?"

बनिया—"मैंने एक दिन एक बूढ़ी स्त्री को एक पैसा दिया था।"

यमराज—"क्यों चित्रगुप्त ! क्या यह सच है ?"

चित्रगुप्त—"हाँ महाराज ! इसने दिया था।"

दूत—"भला और तुम ने क्या किया ?"

बनिया—"मैंने एक लूले लँगड़े को एक पैसा दिया था। वह यमुना के पार जाना चाहता था। पैसा उस के पास नहीं था।"

यमराज—"क्यों जी यह ठीक है ?"

चित्रगुप्त—"हाँ महाराज ! सत्य है।"

दूत—"इसके अतिरिक्त और तुमने क्या किया ?"

बनिया—"बस ! जीवन भर में केवल इतना ही किया है।"

दूत—(यमराज से) "महाराज ! इसके लिये क्या आज्ञा है ?"

यमराज—"इसको दो पैसे लौटा दो और कह दो कि नर्क कुण्ड की ओर जाये। इसका स्थान वहीं है।"

(३६) आप भला तो जग भला

हँसो और सारा संसार तुम्हारे साथ हँसने लग जायेगा। मुँह बनाओ और लोग तुम को देखेंगे। इनका चित्त भी बिगड़ जायेगा। इससे पता लगता कि वास्तव में सुख और दुख कुछ नहीं है, केवल हमारे मन का प्रतिबिम्ब है। जैसा हमारा मन होगा वैसा ही उस समय के लिये यह संसार भासने लगेगा। इसलिये क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम अपने मन की दशा की निरख परख करते हुये उसको वश में लाने का यत्न करें !

कुण्डलिया

आप भले तो जग भला, यह जाने सब कोय
यह जाने सब कोय, भले की सदा भलाई।
बुरा जो हिये का होय, दृष्टि में उसके बुराई॥
जैसी जो करनी करे, वैसी आगे आवे।
निज करनी भरनी पड़े, करनी का फल पावे॥
मन बच कर्म को साधले, इनसे सब कुछ होय।
आप भले तो जग भला, यह जाने सब कोय॥

आवश्यक प्रार्थना

शिव के ग्राहक बहुत कम है इसलिये इस के प्रेमियों से निवेदन है कि वह कम से कम दो दो नये ग्राहक बनाने की सहायता देकर कृतार्थ करें जिससे यह उपयोगी सिलसिला कुछ दिनों तक भली भाँति चल सके और आप सब लोगों की सेवा कर सकूँ।

नन्दू भाई सम्पादक शिव

गुरू के चरण कमल में

बन्दना

दोहे

१—विद्या बुद्धि विवेक की, चरन कमल में खान ।
दया मिहर गुरु कीजिये ! दीजे शुभ मति ज्ञान ॥१॥

× × ×

२—प्रेम भक्ति सद्गति सुगति, सब तुम्हरे आधीन ।
दया दृष्टि गुरु कीजिये ! चरन पड़ा जन दीन ॥२॥

× × ×

३—खटक खटक सालत रहे, दुख दारुन उर सूल ।
अपनी दया से काटिये, भव कलेश का मूल ॥३॥

× × ×

४—चन्दन के ढिग आय के, सुधरे नीम पलास ।
मैं आया तुम शरन में, कीजै अपना दास ॥४॥

× × ×

५—चरन ओट में राखिये, शरनागत पहिचान ।
राधास्वामी सतगुरु ! दीजे भक्ती दान ॥५॥

—०(XX)०—

मानव-कल्याण का सार्वभौम कार्यक्रम

राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी का भाषण

(सन्त और उनकी वांणी का महत्व)

भारतवर्ष में और विशेष करके महाराष्ट्र में सन्तों की परम्परा बहुत दिनों से चली आरही है। उन्होंने अपने समय और कार्यक्षेत्र में बड़े सामाजिक और दूसरे प्रकार के उथल-पुथल बार-बार किए। आज की हमारी जो सामाजिक स्थिति है और जिससे गांव-गांव में और घर-घर में धार्मिक भावनाऐं किसी न किसी रूप में पायी जाती हैं, इसका श्रेय बहुत करके संतों और उनकी वाणियों को है। केवल धार्मिक जीवन में ही नहीं, अपने समय की राजनीति में भी उनका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, पर चाहे सामाजिक दृष्टि से देखा जाये अथवा राजनैतिक दृष्टि से, उनके सभी कामों की पृष्ठ भूमि धार्मिक और आध्यात्मिक रही है। मैं 'धार्मिक' शब्द को प्रचलित अँग्रेजी 'रिलिजियस' शब्द के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ, यद्यपि 'धार्मिक' और 'रिलिजियस' दोनों शब्दों के धातुओं का अर्थ 'धारण करना' अथवा 'बांधना' अर्थात् 'एक साथ रखने' का ही है। हमारे देश की संस्कृति में 'धर्म' केवल साम्प्रदायिकता के अर्थ में ही प्रयुक्त नहीं हुआ है। उसका अर्थ और क्षेत्र बहुत ही विस्तृत और एक प्रकार से मानव-जीवन या यों कहें कि सृष्टि भर के लिए सार्वभौम रहा है। अतः यहां जीवन के प्रत्येक अङ्ग और वर्ण को धार्मिक दृष्टि से ही देखा गया है। इसलिए उनका दृष्टिकोण मनुष्य के समस्त, ऐहिक और पारलौकिक जीवन को अपने सामने रखता था और उनके सिद्धान्तों तथा सीखों का प्रभाव मनुष्य के सारे जीवन पर पड़ता था।

संत विनोबा जी इसी परम्परा के एक उदात्त उदाहरण हमारे सामने हैं। महात्मा गांधी जी भी उसी परम्परा के थे, पर उनके जीवन में उनको राजनैतिक परिस्थितियों से इतना संघर्ष करना पड़ा कि हम अक्सर यह समझ बैठते हैं कि वह एक राजनैतिक क्रान्ति कारी मात्र थे। वास्तव में उनकी शिक्षा हमारे समस्त जीवन को प्रभावित करती है और यदि राजनैतिक परिस्थितियाँ जटिल न होतीं, तो उनके काम भी उसी दृष्टि से देखे जाते और उनके जीवन का भी सन्तों जैसा ही मूल्यांकन होता। सन्त विनोबा जी गांधी जी के साथ में रहे और उनके राजनैतिक कार्यक्रम में भी भाग लेते रहे; पर वह विशेष करके, जो धार्मिक अथवा आध्यात्मिक सत्य महात्मा गांधी बताना चाहते थे, उसको ही अपने जीवन में उतारने में लगे रहे।

—भूदान-यज्ञ से अनुवादित

—: व्यवस्थापक की डायरी :—

१—श्रीमान् भईया जी नन्दूसिंह जी महाराज के आदेशानुसार 'शिव' हर मास में ही बराबर निकलता रहेगा।

२—जिन सज्जनों के अङ्क बक़ाया रह गये हैं उनको इस मास में सबके नाम एक पेकेट में भेजे जांयगे। यदि एक आना या दो आना बैरङ्ग का देना पड़े तो पोस्टमैन को देकर ले लें। इससे पत्र मिलने में अधिक सुविधा रहेगी।

३—उर्दू पाठकों की सेवा के निमित्त 'दयाल' उर्दू मासिक श्रीमान भाई जी नन्दूसिंह जी महाराज के सम्पादकत्व में 'शिव साहित्य प्रकाशन मंडल" दयाल भंडार केशोग्नी हैदराबाद दकन से निकल रहा है चन्दा सालाना ३=) है। अवश्य मंगा कर पढ़ने की चीज़ है।

४—मनुष्य बनो पत्रिका हिन्दी श्री दयाल स्वरूप पं० फ़क़ीर जी महा० के संरक्षण और श्रीमान भाई नन्दूसिंह जी महा० के सम्पादकत्व में दयाल कम्पाउन्ड पेच जामाजी अलीगढ़ से श्रीभाई मुन्शीलाल जी खुशदिल मैंनेजर निकाल रहे हैं। महर्षि शिवव्रतलाल जी महा० के भी उसमें लेख रहते हैं। बड़ी अनुपम पत्रिका है! मंगाकर अवश्य पढ़ें।

५—श्रीमान् भाई श्याम राव जी "नन्द् कुटिया" हैदराबाद दकन संत महात्माओं के चित्रों को प्रेमी जनों के लाभार्थ तय्यार करके भेजने का इन्तज़ाम कर रहे हैं जिसकी फ़ैरिस्त हम पिछले अङ्क में दे चुके हैं। जिनको इच्छा हो वहाँ से मँगाकर अवश्य लाभ उठावें।

६—श्री P. M. G. साहब के दफतर से रजिस्टर नं० न मिलने के कारण बहुत से सज्जनों को पिछले अङ्क न मिलने की शिकायत रही है जो अक्टूबर मास में सब जारी कर दिये जांयगे। आशा है उसके लिये क्षमा करेंगे।

७—जिन सज्जनों ने अपनी वार्षिक भेंट नहीं भेजी है उनसे सविनय प्रार्थना है कि वह शीघ्र ही मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। यह काम सबके सहयोग पर ही चल रहा है। वी० पी० भेजकर नाहक खर्च बढ़ाना हितकर नहीं।

८—जिन सज्जनों ने वार्षिक भेंट के अतिरिक्त सहायतार्थ "शिव" प्रकाशन को दान दिया है हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं।

९—दिल्ली के सज्जनों को जो अंक शेष रह गये हैं २४ अक्टूबर को परम दयाल पं० फ़क़ीरचन्द जी महाराज के सतसंग में भेंट करेंगे।

सेवक—

लल्ला भईया (बालमुकन्द)

मैनेजर-शिव पो० दयालनगर जि० अलीगढ़